नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • वर्ष 8 अंक 9
अक्टूबर 2006 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

कृषि को 17,000 करोड़ का पैकेज हो या एसईज़ेड विरोधी आन्दोलन

पूँजीवादी व्यवस्था में छोटे किसान की नियति है तबाही

एक नियोजित अर्थव्यवस्था में ही कृषि और उद्योग का अन्तर दूर हो सकता है

सम्पादक

राजनेताओं और चुनावी पार्टियों से लेकर, मीडिया और हिन्दी के साहित्यकारों तक–सबका किसान प्रेम इन दिनों जाग उठा है। कहीं किसानों की आत्महत्या पर आँसू बहाये जा रहे हैं, कहीं विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एसईजेड) के खिलाफ तलवारें भाँजी जा रही हैं तो कहीं लेखकगण प्रेमचन्द को याद कर-करके आज के किसान की दुर्दशा पर विलाप कर रहे हैं।

अभी-अभी केन्द्रीय मंत्रिमण्डल ने चार राज्यों के 31 जिलों में कृषि के लिए 17,000 करोड़ रुपये के विशेष आर्थिक पैकेज की घोषणा की है। ये वे राज्य हैं (आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और महाराष्ट्र) जहाँ सबसे अधिक किसानों ने आत्महत्या की है। इस पैकेज में करीब साढ़े दस हजार करोड़ रुपये सब्सिडी और अनुदान के रूप में तथा साढ़े छह हजार करोड़ रुपये कर्ज के रूप में दिये जायेंगे। बकाया ऋणों पर ब्याज माफ करने और उनकी अवधि बढ़ाने के अलावा इस पैकेज में उन्नत बीज, बागवानी, मुर्गीपालन, डेरी, मछली पालन तथा कृषि आधारित लघु उद्योगों के लिए तरह-तरह की योजनाएँ शामिल हैं।

बेशक, किसानों के प्रति यूपीए सरकार की इस दरियादिली की एक तात्कालिक वजह तो अगले साल के शुरू में कई राज्यों में होने वाले विधानसभा चुनाव हैं। लेकिन इसके साथ ही, पूँजीवादी विकास के साथ-साथ कृषि की बिगड़ती हालत से पैदा होने वाले सामाजिक असन्तुलन और असन्तोष को कम करने की कवायदों का भी यह एक हिस्सा है। यह अलग बात है कि ऐसी तमाम कवायदें अपने मकसद में कामयाब नहीं हो सकतीं। पूँजीवादी समाज में उद्योग के मुकाबले खेती को पिछड़ना ही है। पूँजीवादी विकास जितना ही तेज होगा, खेती उतनी ही पिछड़ती जायेगी। खेती से होने वाले मुनाफे की दर कभी भी उद्योगों से बटोरे जाने वाले मुनाफे के बराबर नहीं पहुँच सकती और बुर्जुआ व्यवस्था में मुनाफा ही सब कुछ तय करता है। यही वजह है कि सबसे विकसित पूँजीवादी देश अमेरिका में खेती को बचाये रखने के लिए सरकार को हर साल अरबों डॉलर की सब्सिडी देनी पड़ती है। सरकारी पैकेजों और योजनाओं से खेती के संकट में तात्कालिक राहत ही मिल सकती है। इस संकट की जड़ें पूँजीवाद के आन्तरिक तंत्र में ही हैं। खेती का संकट केवल एक ऐसी नियोजित अर्थव्यवस्था में ही दूर हो सकता है जहाँ उत्पादन का मकसद मुनाफा कमाना नहीं बल्कि लोगों की जरूरतें पूरी करना हो।

कृषि संकट की सबसे अधिक चर्चा होती है किसानों की आत्महत्याओं को लेकर। किसानों को आत्महत्या करने पर कौन मजबूर कर रहा है? मरने वाले किसानों पर एक नजर डालें तो साफ हो जायेगा कि ज्यादातर किसान वे थे जिन्होंने धनी बनने के लोभ में प्राइवेट बैंकों या सूदखोरों से कर्ज लेकर खेती में पैसा लगा दिया और फिर घाटा होने पर कर्ज के मकड़जाल में उलझ गये। बाजार अर्थव्यवस्था में खेती भी बाजार की शक्तियों के खेल से मुक्त नहीं रह सकती–कभी एकाएक माँग बढ़ने से दामों का चढ़ना और फिर "अतिउत्पादन" और मन्दी का दुश्चक्र खेती को भी अपनी लपेट में लेता ही है और बड़े भूस्वामियों की तर्ज पर अपनी खेती से मुनाफा कमा लेने के चक्कर में पड़ने वाला मझोला या छोटा किसान इसमें उलझने से बच नहीं सकता। यह इस बात से भी साफ है कि किसानों की सबसे ज्यादा आत्महत्याएँ खेती में पूँजीवादी विकास वाले इलाकों में हुई हैं। चाहे वह आंध्र प्रदेश हो, या कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र और पंजाब। जिन बड़े किसानों के पास खेती में निवेश करने के लिए पैसा है या जो किसान खेती के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से पैसे निवेश कर सकते हैं, वे तो बाजार में होने वाले उतार-चढ़ाव या खेती की अनिश्चितता से उपजने वाले संकट को झेल सकते हैं और इससे कमाई कर सकते हैं पर जिस किसान के पास खेती के अलावा आमदनी का कोई जरिया नहीं है, जब वह मुनाफा कमाने की कोशिश में लगता है तो देर-सबेर उसका बरबाद होना तय ही है।

पिछली आधी सदी से भारतीय पूँजीपति भूमि सम्बन्धों और खेती के पूँजीवादी रूपान्तरण की जिन नीतियों को लागू कर रहे थे, जिनके लिए उन्हें साम्राज्यवादी एजेंसियों का भरपूर समर्थन मिल रहा था, उनके नतीजे के तौर पर किसान आबादी का विभेदीकरण लगातार जारी था। ऊपर का एक खुशहाल संस्तर धनी हो रहा था और छोटे व गरीब किसानों की भारी संख्या अपनी जमीन से उजड़कर

पेज 4 पर जारी

'गरीबी हटाओ–द्वितीय'–पुरानी टूटी बोतल में पुरानी जहरीली शराब

आजकल रीमेक का जमाना है! 'मुगलेआज़म' और 'डॉन' से लेकर 'शोले' का रीमेक बन रहा है, केबीसी-द्वितीय और न जाने क्या-क्या द्वितीय पेश किये जा रहे हैं। इसमें कुछ हैरानी की बात नहीं है। जब इस पूँजीवाद के पास ही जनता को कुछ नया देने के लिए नहीं रह गया है तो पूँजीवादी मसाला बेचने वाले बेचारे कहाँ से नया-नया माल लायें।

अब इसी तर्ज पर कांग्रेस पार्टी ने भी अपने कबाड़खाने से झाड़-पोंछकर पैंतीस साल पुराना नारा निकाला है–'गरीबी हटाओ'! श्रीमती गाँधी-द्वितीय यानी सोनिया गाँधी अपनी सास इन्दिरा गाँधी की तर्ज पर शायद चुनावी सभाओं में यह कहते हुए भी सुनाई दे जायें–"वो कहते हैं सोनिया हटाओ–मैं कहती हूँ गरीबी हटाओ!" अगले कुछ महीनों में कई राज्यों में विधानसभा चुनाव होने वाले हैं। उदारीकरण की नीतियों को धुआँधार रफ्तार से लागू करने में जुटी मनमोहन सिंह सरकार को पता है कि इन नीतियों के परिणामस्वरूप देश में गरीबों और मेहनतकशों की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ रही है और उनमें असन्तोष बढ़ रहा है। इसीलिए लोक-लुभावन नारों की तलाश जारी है। मगर भारतीय पूँजीवाद की प्रमुख राजनीतिक पार्टी कांग्रेस इस कदर दिवालिया हो चुकी है कि उसके सारे सिपहसालार मिलकर भी लोगों को भरमाने-लुभाने के लिए कोई नया नारा तक नहीं सोच पा रहे हैं।

विधानसभा चुनावों के अवसर पर पेश है
कांग्रेस पार्टी की नई कामेडी
गरीबी हटाओ-द्वितीय
निर्माता-निर्देशक-हीरोइनः
श्रीमती गांधी-द्वितीय
पटकथाः (कांग्रेसी कबाड़खाने में बरामद)
संगीतकार (ढिंढोरची): पूरा बुर्जुआ मीडिया

इन्दिरा गाँधी ने 1971 में जब यह नारा दिया था तो पाकिस्तान से युद्ध, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, राजाओं के प्रिवी पर्स खत्म करने जैसे कदमों से बने माहौल में इस नारे का लोगों पर असर हुआ और वह भारी बहुमत से चुनाव जीत गयीं। लेकिन असलियत कुछ ही दिनों में लोगों के सामने आ गयी। बेतहाशा बढ़ती महँगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार से गुस्साई जनता जगह-जगह सड़कों पर उतरने लगी। 1974 की जबर्दस्त रेल हड़ताल और छात्रों-युवाओं के देशव्यापी आन्दोलन ने सरकार को हिलाकर रख दिया। कुछ ही महीनों बाद देश में इमरजेंसी लगा दी गयी और फिर जो हुआ सबको पता ही है। जैसी कि कार्ल मार्क्स की प्रसिद्ध उक्ति है–'इतिहास अपने को दोहराता है–पहली बार त्रासदी के रूप में, दूसरी बार प्रहसन (मजाक) के रूप में।' श्रीमती गाँधी के गरीबी हटाओ का अन्त जिस त्रासदी में हुआ वह हम देख चुके हैं। अब श्रीमती गाँधी-द्वितीय के गरीबी हटाओ का नतीजा किस प्रहसन के रूप में सामने आयेगा, वह भी जल्दी ही दिख जायेगा।

वैसे श्रीमती गाँधी-द्वितीय और उनकी पार्टी से यह भी पूछा जाना चाहिये कि 35 साल पहले जिस गरीबी को आप लोगों ने इतने जोर-शोर से हटाना शुरू किया था वह हटी क्यों

पेज 3 पर जारी

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

'बिगुल' के बारे में और जानना चाहता हूँ

आपके प्रकाशन "बिगुल" का परिचय 'फरीदाबाद मज़दूर समाचार' से प्राप्त हुआ। आपके प्रकाशन "बिगुल" की विचारधारा जानना चाहता हूँ। इसमें मज़दूरों की औद्योगिक फैक्ट्रियों में व्याप्त समस्याओं का किस प्रकार से समाचारों का प्रकाशन किया जाता है? कृपया "बिगुल" का कोई अंक प्रेषित करने की कृपा करें ताकि मैं भी "बिगुल" के अनुरूप रचनात्मक एवं आर्थिक सहयोग प्रदान कर सकूँ। मैं इसका नियमित सदस्य भी बनना चाहता हूँ। आपके बहुमूल्य विचारों सहित उत्तर की प्रतीक्षा रहेगी।

–डी.एम. चौहान
1847, विवेकनगर
चाँदपुर–246725 (उ.प्र.)

हम करेंगे दादागिरी, तुम करो गाँधीगिरी

'लगे रहो मुन्नाभाई' फिल्म के जरिए आजकल चारों ओर "गाँधीगिरी" का शोर मचाया जा रहा है। गाँधीवाद का इसमें जो कैरिकेचर पेश किया गया है वह तो एक अलग ही सवाल है। आज का पतनशील पूँजीवाद अपने नायकों को भी बाजार में बेचने के लिए कुछ भी कर सकता है। मगर इस फिल्म के जरिए जनता को गाँधीगिरी का जो सबक सिखाने की कोशिश की गयी है वह देश पर राज कर रहे लुटेरों की जरूरत है। इसका सीधा मतलब है अन्याय-जोरो-जुल्म के खिलाफ ताकत के साथ लड़ो मत, जालिमों के हाथों लुटते-पिटते रहो, और उनको गुलाब के फूल देते हुए उम्मीद करते रहो कि एक दिन वे शर्माकर तुम्हें लूटना छोड़ देंगे।

मालिकों की लूट-खसोट, पिटाई और अत्याचार के शिकार मजदूरों को अब संगठित होने, हड़ताल या आन्दोलन करने की जरूरत नहीं है। बस चन्दा जुटाकर कुछ दर्जन गुलाब के फूल खरीदिये और मालिकों को गुलदस्ता पेश करने पहुँच जाइये। वह लजाकर आपकी दिहाड़ी दोगुनी कर देगा और छँटनी किये हुए सारे मजदूरों को वापस काम पर ले लेगा–मिठाई भी खिलायेगा! दुनिया भर में लाखों मजदूरों ने अपने हकों के लिए लड़ते हुए अपनी जान की कुर्बानी दी, पुलिस की लाठियाँ-गोलियाँ खाईं, जेल गये–पर आज तक किसी को इतना सीधा-सा रास्ता समझ में ही नहीं आया!

फिल्म में पेंशन दफ्तर के भ्रष्टाचार का शिकार एक व्यक्ति दफ्तर में जाकर एक-एक करके अपने सारे कपड़े उतारकर घूसखोर कर्मचारी को दे देता है। कर्मचारी लजाकर उसका काम पूरा कर देता है। यहाँ तो दफ्तरों के भ्रष्ट अफसर ओर कर्मचारी खुद ही गरीब आदमी के शरीर से उसकी लंगोटी तक छीनकर बेच देते हैं और उनके चेहरे पर शिकन तक नहीं आती।

बुर्जुआ मीडिया गाँधीगिरी को चाहे जितना उछाले यह एक मध्यवर्गीय चोंचले से ज्यादा कुछ नहीं बनेगा। गरीब आदमी इस बहकावे में नहीं आने वाला। वह जानता है कि कदम-कदम पर लड़े बिना उसका निस्तार नहीं है।

वह जानता है कि अपने हक की आवाज उठाते ही मालिक, प्रशासन, सरकार–सब गाँधीगिरी छोड़कर सीधे दादागिरी पर उतर आते हैं। वह जानता है कि एकजुट होकर लड़ने और पूरी ताकत के साथ लड़ने से ही उसे अपना हक मिलेगा।

–एक मजदूर, नोएडा

बिगुल को सहयोग राशि भेजने वाले साथी ध्यान रखें

• मनीआर्डर भेज रहे हैं तो उसके साथ अपना नाम, पता उस हिस्से में भी लिखें जो संदेश के लिये निर्धारित होता है। एक पोस्टकार्ड पर भी अपना पता लिख कर भेज दें। कई बार सैटेलाइट मनीआर्डर में संदेश वाला हिस्सा खाली होता है।

• कृपया सहयोग राशि भेजकर अपनी सदस्यता का नवीकरण करा लें और बिगुल को जारी रखने में मदद करें।

–सम्पादक

छात्र-नौजवान नयी शुरुआत कहां से करें?

पढ़िये! आह्वान कैम्पस टाइम्स

मुक्तिकामी छात्रों-नौजवानों की त्रैमासिक पत्रिका

एक अंक का मूल्यः 10 रुपये
वार्षिक : 40 रुपये
(डाक व्यय सहित : 48 रुपये)
कार्यालयः बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली।
फोन-011-65976788

बच्चों को भूत-प्रेत, जादू-टोना और परियों की झूठी दुनिया से बाहर लाये और संवेदनशील, कल्पनाशील और विचारशील बनायेः

अनुराग
बाल पत्रिका

सम्पादकः कमला पाण्डेय
एक अंक का मूल्य : 10 रुपये
सम्पादीय कार्यालय
डी-68, निरालानगर,
लखनऊ-226020
फोनः 0522-2786782

'माँ'

(पेज 11 से आगे)

"पीछे हटो! तुम्हें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है! झण्डा सबसे आगे रहेगा!"

"यहाँ से हट जाओ!" एक दुबले-पतले नाटे से अफ़सर ने तलवार चमकाते हुए बारीक आवाज़ में आज्ञा दी।

... ...

जो लोग लाल झण्डा लिये हुए थे उनके और भूरी वर्दियों वाले लोगों की ठोस लहर के बीच फ़ासला कम होता जा रहा था। माँ को अब सिपाहियों की सामूहिक आकृति दिखायी दे रही थी–एक विकृत चेहरे को ठोंक-पीटकर गन्दे पीले रंग की कतार का रूप दे दिया गया था, जो सड़क के आर-पार फैली हुई थी और जिसमें इधर-उधर विभिन्न रंगों की आँखें लगी हुई थी। इस कतार के सामने संगीनों की क्रूर नोकें चमक रही थीं, जो जुलूस में चलने वालों के सीनों को अपना निशाना बनाये हुए थीं। उन्हें छुए बिना ही फ़ौलाद की ये संगीनें उन्हें एक-एक करके काटे दे रही थीं। भीड़ छँटती जा रही थी।

माँ ने अपने पीछे लोगों के भागने की आवाज़ सुनी, लोग उत्तेजित स्वर में चिल्ला रहे थे :

"भागो, भागो!..."

"व्लासोव, भाग आओ!..."

"पावेल, पीछे हट आओ!"

"पावेल, झण्डा नीचे झुका लो!" वेसोवश्चिकोव ने गम्भीर स्वर में कहा।

"मुझे दे दो, मैं छुपा दूँगा!"

उसने बढ़कर झण्डे का बाँस पकड़ लिया और झण्डा पीछे को झुक गया।

"छोड़ दो!" पावेल ने चिल्लाकर कहा।

निकालाई ने जल्दी से अपना हाथ खींच लिया मानो जल गया हो। गीत बन्द हो गया। लोग रुक गये और पावेल के गिर्द एक ठोस दीवार का घेरा बनाकर खड़े हो गये, पर वह आगे बढ़ता ही रहा। सहसा अप्रत्याशित रूप से घोर निस्तब्धता छा गयी, मानो एक अदृश्य बादल ने आकाश से उतरकर सब लोगों को ढँक लिया हो।

कोई बीस आदमी झण्डे को घेरे खड़े थे–बीस से ज़्यादा न रहे होंगे–पर वे अटल खड़े थे। अपनी चिन्ता और उनसे कुछ कहने की एक अस्पष्ट-सी इच्छा के वश में माँ उनकी ओर खिंची जा रही थी...

"लेफ्टिनेण्ट, छीन लो इनके हाथ से!" उस लम्बे-से बूढ़े आदमी से झण्डे की ओर इशारा करके कहा।

उस नाटे अफ़सर ने पावेल की तरफ़ झपटकर झण्डा पकड़ लिया।

"छोड़ दो!" वह चिल्लाया।

"हाथ हटा लो!" पावेल ने भी ऊँचे स्वर में कहा।

झण्डा हवा में डगमगाया, पहले दाहिनी ओर झुका, फिर बायीं ओर और फिर सीधा खड़ा हो गया। वह नाटा अफ़सर उछलकर पीछे हटा और ज़मीन पर बैठ गया। निकोलाई अपना मुक्का हिलाता तेज़ी से झपटता हुआ माँ के सामने से गुज़रा।

"गिरफ़्तार कर लो इन्हें!" बूढ़ा पाँव पटककर चिल्लाया।

कई सिपाही आगे बढ़े। एक ने अपनी बन्दूक़ का कुन्दा घुमाया। झण्डा काँपकर आगे गिरा और सिपाहियों के भूरे रंग के समूह में खो गया।

"हाय, मेरा लाल!" किसी का करुण क्रन्दन सुनायी दिया।

माँ एक घायल पशु की तरह चिल्ला उठी। उसके उत्तर में सिपाहियों के बीच से पावेल का स्पष्ट स्वर सुनायी दिया :

"विदा, माँ! विदा, मेरी प्यारी माँ. .."

माँ के मस्तिष्क में केवल दो विचार आये : "वह ज़िन्दा है! उसने मुझे याद किया!"

"विदा, माँ!" उक्रइनी का स्वर सुनायी दिया।

वह उन्हें एक बार देख पाने के लिए पँजों के बल खड़ी हो गयी। सिपाहियों के सिर से ऊपर उसे अन्द्रेई की सूरत दिखायी दी। वह मुस्करा रहा था और सिर झुकाकर उसे सलाम कर रहा था।

"आह, मेरे बच्चो... अन्द्रेई!... पावेल!..." माँ ने चिल्लाते हुए कहा।

"विदा, साथियो!" उन्होंने सिपाहियों के बीच से चिल्लाकर कहा।

एक छिन्न-विच्छिन्न प्रतिध्वनि ने, जिसमें कई स्वर सम्मिलित थे, उनका उत्तर दिया। यह प्रतिध्वनि खिड़कियों से, कहीं ऊपर से शायद छतों पर से आ रही थी।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आवादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : 289-सी, श्रमिक कुंज, सेक्टर-66 नोएडा
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्यः एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, बायम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
पार्टी कार्य के बारे में 15/-
जनता के बीच पार्टी का काम 30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

पूँजीवादी व्यवस्था में गरीबों की आवास समस्या दूर नहीं हो सकती

भारत में लगभग 17 करोड़ लोग शहर की गन्दी बस्तियों में रहने को मजबूर

आवास मनुष्य की एक बुनियादी जरूरत है। जंगलों और गुफाओं से बाहर आने के बाद से मानव-समाज विकसित और विकासशील देशों में निर्मित गगनचम्बी इमारतों की जगमगाहट देखकर आँखें चौधियाँ जाती हैं, सुव्यवस्थित ढंग से बसाये गये आवासीय सेक्टरों को देखकर सपना साकार रूप ले रहा है। पर सच्चाई तो कुछ और बयान कर रही है।

अब आइए आपको तेजी से विकसित हो रहे एक भारतीय औद्योगिक शहर के केन्द्र में स्थित मज़दूरों की बस्ती में ले चलते हैं। कई सेक्टरों में बँटे इस औद्योगिक शहर के केन्द्र में चारों तरफ से फैक्टरियों से घिरी हुई मज़दूरों की यह बस्ती बसी हुई है। शहर बसाते वक्त यह जगह इसलिए खाली छोड़ दिया गया था क्योंकि वहाँ से बिजली की हाईटेंशन तार गुजरी हुई थी। धीरे-धीरे मज़दूरों ने इस जगह पर बस्ती बसा ली। झुग्गी में बेतरतीब ढंग से बनी हुई छोटी-छोटी झुग्गियाँ हैं। कुछ झुग्गियाँ दो मंजिली हैं जिनमें दूसरी मंजिल पर जाने के लिए छत में एक सुराख छोड़ दिया गया है, जिसके सहारे बाँस की एक सीढ़ी लगी रहती है। चढ़ते वक्त अगर आप जरा भी गड़बड़ी करेंगे तो सीधे नीचे। इन झुग्गियों के बीच-बीच में पतली-पतली गलियाँ हैं तथा उन गलियों के बीच से बहती हुई गन्दी तथा बदबूदार नालियाँ हैं। पूरी बस्ती चारों तरफ से गन्दगी का अम्बार नज़र आती है। जैसे-जैसे आप बस्ती के अन्दर धँसते जाते हैं आपको ज़िन्दगी का एक अलग ही रूप नज़र आता है। यहाँ ना तो पानी का कोई प्रबन्ध है तथा ना ही शौचालय का कोई समुचित व्यवस्था है। गन्दी नालियों के किनारे खेलते-खिलखिलाते बच्चे आपको मुँह चिढ़ाकर-चिढ़ाकर यह बता रहे होंगे कि देखो यह है ज़िन्दगी का असली रूप, साक्षात नरक।

अब आइए आपको ले चलते हैं कनाडा के वैंकूवर शहर में जहाँ पर 'विश्व शहरी मंच-तृतीय' की बैठक हो रही है तथा जहाँ लगभग दस हज़ार लोग इकट्ठा हुए हैं। दुनिया के तमाम शहरों में बढ़ रही मज़दूर बस्तियों से परेशान हैं तथा कोई समाधान निकालना चाह रहे हैं। वे लोग इस बात से चिन्तित हैं कि बड़ी-बड़ी बहुमंजिली इमारतें सुव्यवस्थित यातायात प्रबन्ध, स्वच्छ तथा सुन्दर वातावरण जहाँ लोगों को लुभाता है, वहीं दूसरी ओर सड़कों पर मँडराते, भिखमँगों, पागलों, शराबियों, मज़दूर बस्तियों में नारकीय जीवन स्थितियों में रह रही मज़दूर आबादी इस व्यवस्था की सड़ाँध को उजागर करती हैं।

अब आइए कुछ तथ्यों पर नज़र डालते हैं : 1990 में शहर की गन्दी बस्तियों में नारकीय जीवन जी रहे लोगों की संख्या लगभग 71.5 करोड़ थी जो अब बढ़कर लगभग 99.8 करोड़ हो गई है तथा वृद्धि की रफ्तार यही रही तो 2020 तक यह आबादी लगभग एक अरब चालीस करोड़ हो जाएगी। यह बताने की जरूरत नहीं कि शहरी गरीबों की सबसे बड़ी आबादी एशिया (लगभग 58.1 करोड़) में है, ठीक इसके बाद सब सहारा अफ्रीका (लगभग 19. 9 करोड़) तथा लैटिन अमेरिका (लगभग 13.4 करोड़) है। अकेले भारत में लगभग 17 करोड़ लोग शहर की गन्दी बस्तियों में रहने को मजबूर हैं। विश्व के ये महादेश सबसे ज्यादा साम्राज्यवादी शोषण की मार झेल रहे हैं। इन्हीं देशों में भावी क्रान्ति की तैयारियाँ होंगी।

पूरी दुनिया में हो रही पूँजीवादी विकास का यह एक पक्ष है। तमाम कोशिशों के बावजूद यह मानवद्रोही व्यवस्था अपने दागदार चेहरे को छुपाए रखने में असफल साबित हो रहा है। जैसा कि कार्ल मार्क्स ने कहा था, "किसी औद्योगिक शहर या व्यापारिक शहर में पूँजी संचय की दर जितनी तेज होती है, शोषण के लिए उपलब्ध मानव-सामग्री उतनी ही तेजी से खिंची आती है और उसकी रिहाइश के लिए उपलब्ध अस्थायी स्थितियाँ उतनी ही बुरी होती है।" (पूँजी, खण्ड-एक) आज स्थितियाँ वाकई काफी बुरी हो चुकी हैं।

यह मानवद्रोही व्यवस्था लगातार मेहनतकशों की ज़िन्दगी को तबाह करने पर तुली हुई है। अभी कुछ ही दिन पहले मुम्बई में मेट्रो रेल परियोजना का उद्घाटन करते हुए पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के मुखिया मनमोहन सिंह ने फरमाया कि "यह बुनियादी तौर पर सभी शहरी नागरिकों के जीवन-स्तर को उन्नत करने के लिए है, विशेषकर गरीबों के।" दूसरी ओर पिछले दिनों ही महाराष्ट्र सरकार ने गरीबों तथा मज़दूरों के खिलाफ़ झुग्गी-झोपड़ी उजाड़ो अभियान चलाकर लाखों लोगों को बेघर कर दिया। आये दिन अखबारों में तथा खबरिया चैनलों पर उजड़ती मज़दूर बस्तियों की खबरें छपती रहती हैं, तबाह और बर्बाद होती ज़िन्दगी की तस्वीरें दिखती रहती हैं।

ऐसा नहीं है कि इन तबाही- बर्बादी की कार्रवाइयों का लोग विरोध नहीं करते हैं, लोग अपने ढंग से बखूबी विरोध करते हैं, लाठियाँ खाते हैं, आँसू गैस के गोलों का सामना करते हैं, गोलियाँ भी खाते हैं, और थक-हारकर अपना कोई और प्रबन्ध कर लेते हैं।

ऐसा क्यों है? क्योंकि इन विरोधों तथा विद्रोहों को लम्बी उमर देकर इस मानवद्रोही व्यवस्था के खिलाफ़ इन मेहनतकशों को लामबन्द करके एक मानव केन्द्रित समाज के निर्माण के लिए एकजुट करने वाली ताकतें आज खुद निराशा और हताशा के दौर के गुजर रही हैं। कुछ लोग लकीर पीट रहे हैं। संसदीय वामपंथी बहुत पहले ही मेहनतकशों से ऐतिहासिक गद्दारी कर चुके हैं।

आज जरूरत है उन नौजवानों की जो इस मानवद्रोही व्यवस्था को तहस-नहस करने के लिए कमर-कस कर, बदली परिस्थितियों की समझदारी से लैस होकर मज़दूर अवाम के बीच पैठ जाएँ तथा धैर्यपूर्वक आने वाले महासंग्राम की तैयारी करें। आज जब क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है, हर तरफ जल्दी से जल्दी क्रान्ति करने की जल्दबाजी दिख रही हैं, उस दौर में धैर्यपूर्वक एक-एक ठोस कदम बढ़ाते आगे बढ़ने वालों की जरूरत है। आज नौजवानों को संकल्प लेना पड़ेगा कि वे एक ऐसी समाज-व्यवस्था को बनायेंगे जिसके केन्द्र में मनुष्य होगा, सबके लिए समान शिक्षा तथा सबको रोजगार के समान अवसर मिलेंगे, सबको आवास का प्रबन्ध किया जा सकेगा!

मज़दूरों का गीत

"गन्दे नाले से सटे हुए,
कूड़े-कचरे के ढेर के बीच,
अँधियारे के प्रेमी उल्लू,
रहते हैं सुख से चोर नीच
जिस जगह, वहीं हम दुखियारे!
मैले गन्दे चिथड़े धारे!
टूटे-फूटे से दड़बों में
रहते हैं सारे के सारे!"

—पिएर दुपों*
(कार्ल मार्क्स, 'पूँजी', खण्ड-एक)

*1846 में फ्रांस की शहरी आबादी 24.42 प्रतिशत तथा खेतिहर आबादी 75.58 प्रतिशत थी; 1861 में शहरी आबादी 28.86 प्रतिशत तथा खेतिहर आबादी 71.14 प्रतिशत रह गयी। पिछले पाँच वर्षों में खेतिहर आबादी में कमी और भी उल्लेखनीय थी। 1846 में ही पिएर दुपों ने अपनी कृति 'मज़दूरा का गीत' में ये पक्तियाँ लिखी थीं, जिसे कार्ल मार्क्स ने 'पूँजी' में उद्धृत किया था।

तो आवास समस्या को भला किस प्रकार हल किया जाये? वर्तमान समाज में बिलकुल उसी प्रकार, जिस प्रकार कोई भी अन्य सामाजिक समस्या हल की जाती है : माँग और पूर्ति के क्रमिक आर्थिक समतलन द्वारा, और यह एक ऐसा समाधान है, जो स्वयं समस्या को बारम्बार पुनरुत्पन्न करता है और इसलिए कोई समाधान नहीं होता। सामाजिक क्रान्ति इस समस्या को कैसे हल करेगी, यह सिर्फ हर विशेष मामले की परिस्थितियों पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि उन कहीं अधिक दूरगामी प्रश्नों से भी सम्बद्ध है, जिनमें सबसे बुनियादी प्रश्न शहर और देहात के बीच वैषम्य के उन्मूलन का है। चूँकि भावी समाज के संगठन के लिए यूटोपियाई प्रणालियों की रचना करना हमारा काम नहीं है, इसलिए इसमें यहाँ जाना निरर्थक से भी ज्यादा होगा। मगर एक चीज निश्चित है—बड़े शहरों में मकानों की अब भी इतनी ही काफी मात्रा है कि वास्तविक "आवासों की **कमी**" का तुरंत प्रतिकार किया जा सकता है, बशर्ते कि उनका विवेकपूर्वक उपयोग किया जाये। कुदरती तौर पर यह सिर्फ वर्तमान मालिकों के स्वत्वहरण और उनके मकानों में गृहहीन मजदूरों अथवा अपने वर्तमान मकानों में ठसाठस भरे मजदूरों को ठहराने के जरिये ही हो सकता है। सर्वहारा द्वारा राजनीतिक सत्ता को प्राप्त कर लेने के साथ सामान्य हित के लिए सुचिन्ता से प्रेरित इस उपाय को क्रियान्वित करना उतना ही आसान हो जायेगा, जितना कि वर्तमान राज्य द्वारा दूसरी जब्तियों और आवास दिलाने की कार्रवाइयों को करना है।

– फ्रेडरिक एंगेल्स (आवास समस्या)

'गरीबी हटाओ–द्वितीय'–पुरानी टूटी बोतल में पुरानी जहरीली शराब

(पेज 1 से आगे)

नहीं! ऐसा तो होगा नहीं कि गरीब खुद ही अपनी गरीबी को पकड़े हुए हैं, उसे हटने नहीं दे रहे। वे तो रात-दिन कमरतोड़ मेहनत कर रहे हैं, कारखानों में हड्डियाँ गला रहे हैं, खेतों को अपने खून-पसीने से सींच रहे हैं–पर गरीबी है कि जाती ही नहीं। हाँ, देश के अमीरों की तादाद और उनकी अमीरी जरूर बढ़ती जा रही है। आजादी के समय पूँजीवादी घरानों की संख्या 25 थी जो आज बढ़कर 1000 से भी ज्यादा हो गयी है। बड़े पूँजीपति घरानों की पूँजी में कई सौ गुना की बढ़ोत्तरी हुई है। सुना है, देश में करोड़पतियों की संख्या दस लाख के आस-पास पहुँच गयी है। मगर गरीबी है कि जाने का नाम ही नहीं ले रही।

सच तो यह है कि मनमोहन सिंह सरकार जो नीतियाँ लागू कर रही है उनसे गरीबी हटने के बजाय बढ़ती ही जा रही है। पूँजी की मार से छोटे और गरीब किसानों का खेती से उजड़कर दिहाड़ी मजदूर बनने का सिलसिला तेज होता जा रहा है। कारखानों-दफ्तरों में स्थायी नौकरियाँ खत्म करके दिहाड़ी और ठेके पर काम कराया जा रहा है। 25 करोड़ बेरोजगारों की फौज सड़कों पर धूल फाँक रही है और मालिकों के लिए आसान हो गया है कि मनचाही कम से कम मजदूरी पर लोगों को जब चाहें काम पर रखें और जब चाहें निकाल दें। सरकारी आँकड़ों में घपलेबाजी करके बताया जाता है कि देश में सिर्फ 26 प्रतिशत ही गरीब रह गये हैं लेकिन देश के प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने इस झूठ की पोल खोलते हुए साबित किया है कि 60 से 70 फीसदी जनता गरीबी में जी रही है (देखिये, 'बिगुल', सितम्बर 2006)। आम निम्न मध्यवर्गीय आबादी तक महँगाई और बेरोजगारी से तबाही झेल रही है। गरीबी से तंग आकर आये दिन लोग आत्महत्याएँ कर रहे हैं। माएँ अपने बच्चों तक को बेचने पर मजबूर हैं।

बेरोजगारी दूर करने के लिए बनी योजनाओं का खूब डंका बजाया जा रहा है पर इनसे देश के चन्द एक इलाकों में, थोड़े से लोगों को, साल में कुछ दिन का ही रोजगार मिल रहा है। बाकी दिन ये कैसे जियेंगे? बाकी बेरोजगार आबादी को रोजगार कैसे मिलेगा? इन सवालों पर संसद मौन है।

अब गरीबी हटाने के लिए 40 हजार करोड़ की योजना शुरू होने वाली है। जाहिर है कि यह भारी धनराशि गरीबों की गाढ़ी कमाई से निचोड़े गये टैक्सों से ही आयेगी। और जैसा कि श्रीमती गाँधी-द्वितीय के पति राजीव गाँधी ने कहा था—सरकार अगर एक रुपया खर्च करती है तो उसका 15 पैसा ही सही आदमी तक पहुँचता है, बाकी का 85 पैसा नेता, अफसर, व्यापारी, दलाल खा जाते हैं। यानी गरीबी हटाने की इस योजना की मलाई ही नहीं ज्यादातर दूध भी अमीर ही चट कर जायेंगे। गरीबों को तो बस थोड़ी-सी जूठन ही मिलेगी जिसके सहारे वह अपनी गरीबी का बोझ ढोते हुए कुछ दिन और जी लेंगे। इस बीच चुनाव आदि निपट जायेंगे और गरीबी हटाओ का नारा वापस कांग्रेसी कबाड़खाने में पटक दिया जायेगा।

यह तो वह पटकथा है जो कांग्रेस के सिपहसलारों ने अपने इस ड्रामे के लिए तैयार की है। मगर जरूरी नहीं कि जनता इसी पटकथा के मुताबिक चुपचाप अपना पार्ट निभाये और अगले चुनाव तक भूल जाये। अगर कहीं जनता ने अपने मन से यह डॉयलाग बोलना शुरू कर दिया तो क्या होगा —"तुम कहते हो गरीबी हटाओ—हम कहते हैं लुटेरों को हटाओ।" और जरा सोचिये, अगर कहीं जनता ने भगतसिंह की इस बात पर अमल कर दिया तो भला क्या होगा—

"अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी हकों से वंचित रखती है तो उस देश के नौजवानों का अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य बन जाता है कि ऐसी सरकार को बदल दें या तबाह कर दें।"

पूँजीवाद और शहरों की गंदी बस्तियाँ

पूँजीवाद के क्रूर चेहरे को नंगा करती शहरों की गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों की विश्व स्तर पर संख्या सन 2007 में एक अरब पार कर जाएगी। इसका मतलब है शहरों में रहने वाले तीन लोगों में से एक इन गन्दी बस्तियों का रहने वाला होगा। इसके साथ ही पहली बार शहरी जनसंख्या भी ग्रामीण जनसंख्या से ज्यादा हो जायेगी।

पूँजीवाद को ही आखिरी रास्ता कहने वाले और यहीं पर इतिहास का अन्त बताने वाले पूँजीवादी कलमघसीट बुद्धिजीवी चाहते हैं कि तमाम मेहनतकश जनता जानवरों जैसी जिन्दगी बिताए और उन्हें ऐशो-आराम की हर चीज पैदा करके दे। कुछ लोग पूँजीवाद के मानवीय चेहरे की बात करते हैं। विश्व स्तर पर गन्दी बस्तियों के बड़े होते जाते आकार उनके इन हवाई ख्यालों की हवा निकालते हैं। एक साल बाद पूरी दुनिया में हर तीन में से एक आदमी गन्दी बस्ती का बाशिंदा होगा। ये है पूँजीवाद! मानवीय नहीं क्रूर चेहरा!

जितना बड़ा शहर होता है उसके ही मुताबिक गन्दी बस्ती का आकार होता है। असल में एक ही शहर में दो शहर बसे होते हैं। एक तरफ तो अच्छे घर साफ-सुथरी और हवादार सड़कें-गलियाँ, साफ पानी, बगीचे, मनोरंजन के साधन और दूसरी तरफ गंदी बस्तियाँ, छोटे-छोटे कमरों में ठूस-ठूसकर भरे लोग, गन्दा पानी, गन्दी-कच्ची-तंग गलियाँ जहाँ न धूप होती है न हवा। सबसे कड़ी मेहनत करने वाले ये लोग सबसे गन्दी जिन्दगी जीने पर मजबूर होते हैं। इनको ही दुनिया की सारी बीमारियाँ होती हैं जिनका ये कभी इलाज नहीं करवा पाते। इनके बच्चों का स्कूल जाना न जाना एक बराबर होता है। अमीरों के कुत्ते भी इनसे अच्छा भोजन कर लेते होंगे। पूँजीवाद के अधीन शहरीकरण का यही मतलब होता है।

यू.एन.ओ. की रिपोर्ट बताती है कि विश्व स्तर पर अगले 20 सालों तक गन्दी बस्तियों की जनसंख्या में हर साल 2.7 करोड़ का इजाफा होगा, जो शहरीकरण की वृद्धि का 95 प्रतिशत हिस्सा हड़प लेगी। मुनाफे की हवस पूँजीवादी समाज को यहीं तक पहुँचाएगी। इससे सिद्ध होता है कि पूँजीवाद एक लाइलाज बीमारी है। इसके चलते अमीरों का और अमीर होना और गरीबों का और गरीब होना चलता रहेगा। पूँजीवादी समाज के ऐसे हालात यह इशारा भी करते हैं कि पूँजीवाद अमर नहीं हो सकता। इसे मरना ही होगा। खुद मज़दूर जनता के हाथों–जिसे पूँजीवादी ने दोनों हाथों से लूटा है– इसकी कब्र खुदेगी।

भूख की हुकूमत से सताए बच्च

"...कुल मिलाकर औसत भारतीय का कद छोटा ही होता है। औसत भारतीय बच्चे की आंखें चमक रहित, बाल रूखे-रूखे और चमड़ी खुश्क होती है। इन दबे-कुचले बच्चों को प्यार करना तो दूर, इन पर नजर भी नहीं टिकती या टिकाई जा सकती। भारतीय अमीरों की तो बात ही छोड़ो, मध्यम वर्ग के आरामपरस्त बुद्धीजीवियों को भी इनसे घिन होती है। भारत के ऐसे बदकिस्मत बच्चों की संख्या करोड़ों में हैं..."

डा. अनूप सिंह के ये शब्द सचमुच औसतन भारतीय बच्चों की तस्वीर पेश करते हैं। संयुक्त राष्ट्र की "राष्ट्रों की प्रगति" रिपोर्ट के अनुसार हर चौथा भारतीय कुपोषण का शिकार है। भारतीय बच्चे विश्व के कुल बच्चों के 20 प्रतिशत हैं और अफसोस कि 40 फीसदी बच्चे भोजन की कमी का शिकार हैं। आँकड़े बताते हैं कि पाँच साल तक की उम्र के लगभग आधे बच्चे कुपोषण से ग्रस्त हैं। हर साल 70 लाख बच्चे विटामिन ए की कमी से आँखों के रोगों का शिकार होते हैं। इनमें से 45 हजार के लागभग मासूम बच्चे पूरी तरह नेत्रहीन हो जाते हैं और एक लाख बच्चों की नजर बहुत ही कमजोर हो जाती है। इस सबका प्रमुख कारण कम और बुरा भोजन और घटिया स्तर का जीवन है। यूनीसेफ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में हर रोज 5000 बच्चे भुखमरी और इससे पैदा होने वाली बीमारियों से मर जाते हैं। आधी माताएं और उनके बच्चे खून की कमी के शिकार हैं। इस सबका भी स्पष्ट कारण भोजन की कमी है।

पिछले दिनों हरियाणा सरकार ने "प्रिंस" को बचाने के नाम पर जो ढोंग किया और यह दिखाने की कोशिश की कि वह बच्चों के प्रति बहुत फिक्रमंद है। वहीं हरियाणा की तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि इसी राज्य में हर साल कम से कम पांच हजार बच्चे भोजन की कमी से मर जाते हैं।

आबादी के सबसे नीचे के 60 फीसदी हिस्से को अनाज और दालों के रूप में बुनियादी खुराक भी नहीं मिलती। "राष्ट्रों की प्रगति" रिपोर्ट बताती है कि भारत में हर साल पाँच वर्ष की आयु पूरी करने से पहले ही 1000 में 109 बच्चों की मौत हो जाती है। सबसे खुशहाल राज्यों में गिने जाने वाले पंजाब में भी 1995 में यह गिनती 1000 के पीछे 70 थी।

आँकड़ों की यह भयावहता दिल दहलाने वाली है। पूँजीवाद से और क्या आशा की जा सकती है?

आठवीं बाल संजीवनी मुहिम सर्वे में पाया गया कि मध्य प्रदेश में 49.21 फीसदी बच्चे कुपोषण के शिकार हैं।

0.91 प्रतिशत तो गम्भीर रूप से प्रभावित हैं। शिओपूर जिले का रिकॉर्ड तो बहुत ही खराब है, तकरीबन 58 फीसदी बच्चे कुपोषण का शिकार है। पिछले दिनों हुई कुछ मौतों के संबंध में अंग्रेजी पत्रिका फ्रंटलाइन द्वारा वहां के अधिकारियों से बातचीत की गई। अधिकारियों द्वारा दिए गए जवाब कुछ इस प्रकार थे –"यह उनका अत्याचार है," "वे अपने बच्चों की चिंता नहीं करते, उनके कई बच्चे होते हैं, कई बार तो उन्हें उनकी याद भी नहीं रहती," "उन्हें भूखे रहने की आदत पड़ चुकी है" आदि-आदि। अपनी करतूतों का ठीकरा जनता के सिर पर फोड़ना पूँजीवाद के इन टुकड़खोरों का बखूबी आता है।

जिस समाज में हर चीज पैसे की ताकत से खरीदी जाती है, जहां मानवीय मूल्यों का कोई स्थान न हो, वहाँ भूख से मरते बच्चे कोई हैरानी पैदा नहीं करते। हड्डियाँ निकले बच्चों के शरीर, जवानी में ही बूढ़ी हो चुकी माओं के चेहरे बार-बार यह अहसास करवाते हैं कि पूँजी की हुकूमत के रहते मेहनत करके कमाने वाले लोगों पर भूख की हुकूमत जारी रहेगी।

ऐसा नहीं कि देश में अनाज की कमी है, बल्कि करोड़ों टन अनाज देश के विभिन्न गोदामों में पड़ा सड़ रहा है। कितना ही अनाज हर साल समुद्र में फेंक दिया जाता है। मुख्य बात यह है कि लोगों के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नहीं है। पूँजीवाद का नियम ही कुछ ऐसा है। एक तरफ तो अनाज और तैयार वस्तुओं से भरे भण्डार और दूसरी तरफ भूख से तड़पते और बुनियादी सहूलियतों से वंचित लोग। लेकिन यह भी सच है कि भूखे मरने से तो लड़कर मरना अच्छा होता है। आने वाले समय में जरूर ही तमाम मेहनतकश जनता मज़दूर वर्ग की अगुवाई में एकता बनाएगी और पूँजी की ताकत को खत्म करने की तरफ कदम बढ़ाएगी।

– सतवन्त

पूँजीवादी व्यवस्था में छोटे किसान की नियति है तबाही

(पेज 1 से आगे)

शहरी-देहाती उजरती मजदूरों में शामिल होती जा रही थी। उदारीकरण की नीतियों ने इस प्रक्रिया को बहुत तेज कर दिया है। मध्यम किसानों तक का एक हिस्सा मजदूरों की कतार में शामिल हो रहा है और एक हिस्सा, जिसके पास आमदनी के दूसरे जरिए भी हैं, खुशहाल किसान बनता जा रहा है। विश्व बाजार में दीर्घकालिक मन्दी के संकट से पीड़ित साम्राज्यवादी नये-नये बाजारों की तलाश में पिछड़े देशों के सुदूर गाँवों तक पहुँच रहे हैं और देशी पूँजीपतियों से लेकर कुलकों-फार्मरों तक को कोने में धकेल रहे हैं। ऐसे में छोटे किसानों और मझोले किसान के एक हिस्से का पूँजी की मार से तबाह होकर सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा की कतारों में शामिल होना उनकी नियति है। कुछ सब्सिडी, कर्ज माफी या विशेष पैकेजों से यह गति रुकने वाली नहीं है। और वैसे भी ऐसे पैकेजों का बड़ा हिस्सा तो बड़े किसान ही हड़प जाते हैं।

कृषि में नयी योजनाएँ पूँजीवादी ढंग की खेती को बढ़ावा देती हैं जो लगातार निवेश की माँग करती है और कुल मिलाकर छोटे किसानों की तबाही की रफ्तार को तेज ही करती है।

किसानों की हालत पर छाती पीटने वाले कभी इस बात की चर्चा नहीं करते कि पूँजीवादी नीतियों की मार से करोड़ों-करोड़ की मजदूर आबादी पर क्या बीत रही है। करोड़ों खेतिहर मजदूरों की बदहाली और देश के कई इलाकों में खेतिहर मजदूरों की आत्महत्याओं की खबरें कभी सुर्खियाँ नहीं बनतीं। अपनी जगह-जमीन से उजड़कर मजदूर बनने को बाध्य करोड़ों छोटे और गरीब किसानों की दास्तान मीडिया में नहीं सुनायी देती। खैर, बुर्जुआ मीडिया से यह उम्मीद ही क्यों हो। मगर खुद को मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी प्रतिनिधि कहने वाले ज्यादातर संगठन भी तो आज खेती के संकट पर मालिक किसानों की भाषा में बात कर रहे हैं। शहरी और देहाती सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा के निर्मम शोषण और नारकीय जीवन की अनदेखी करते हुए किसानों की तबाही का रोना रो रहे हैं। उनमें छोटे और मझोले किसानों को यह बताने का साहस ही नहीं है कि पूँजीवादी व्यवस्था में उनकी तबाही होनी ही है और उनके सामने एकमात्र रास्ता यही है कि वे उजरती गुलामों के साथ खड़े होकर पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के साझीदार बनें।

एसईजेड के लिए किसानों की जमीनें हड़पे जाने के मामले में भी यही हो रहा है। बाजार के तर्क से देखें तो किसानों की ज्यादा कीमत की माँग सही है। लेकिन यह तो बाजार का तर्क है। दरअसल यह छोटे मालिक यानी खाते-पीते किसान और बड़े मालिक यानी उद्योगपति के बीच का झगड़ा है। गरीब किसान को तो ऐसे भी अपनी जमीन औने-पौने दामों पर ही बेचनी पड़ती है। पूँजीवाद का आम नियम है कि बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। बड़े पूँजीपति छोटे पूँजीपति को, एकाधिकारी पूँजीपति गैर-एकाधिकारी पूँजीपति को और वित्तीय एवं औद्योगिक पूँजीपति पूँजीवादी फार्मरों-भूस्वामियों-कुलकों को तबाह करने या दबाने का कोई मौका नहीं छोड़ते। किसी भी पूँजीवादी व्यवस्था में कृषि और उद्योग के बीच लगातार गहराते अन्तर और अन्तरविरोध का तथा बड़े मालिक किसानों के उद्योगपतियों के साथ गहराते अन्तरविरोधों का रणकौशलात्मक (टैक्टिकल) इस्तेमाल करना एक बात है, लेकिन मुनाफाखोर कुलकों और उद्योगपतियों के झगड़े में सर्वहारा के प्रतिनिधियों को पड़ने की क्या जरूरत है।

एसईजेड के लिए किसानों की जमीन के कम दाम मिलने पर तो सभी चीख-पुकार मचा रहे हैं लेकिन कोई यह सवाल नहीं उठा रहा है कि इन एसईजेड के भीतर काम करने वाले करोड़ों मजदूरों के साथ क्या होने वाला है। देश भर में बनने वाले लगभग 300 एसईजेड में लगने वाले हजारों उद्योगों में मजदूरों को किसी तरह के अधिकार नहीं होंगे। मालिकान मनचाही मजदूरी और मनमानी शर्तों पर जब जितने चाहे मजदूरों को रख सकेंगे और जब चाहे उन्हें निकाल बाहर कर सकेंगे। मजदूर न तो यूनियन बना सकेंगे और न ही उन्हें किसी तरह की कानूनी सुरक्षा हासिल होगी। वैसे तो, मजदूरों के ज्यादातर अधिकार पहले ही किश्तों में खत्म किये जा चुके हैं, लेकिन रहे-सहे अधिकार भी इन एसईजेड में छिन जायेंगे। बहुतेरे मामलों में तो इन एसईजेड के भीतर देश के कानून लागू ही नहीं होंगे।

मगर ये मुद्दे एसईजेड पर हाय-तौबा मचाने वालों ने कभी नहीं उठाये। यहाँ तक कि मजदूरों की पार्टी कहलाने वाले संसदीय वामपंथी भी एसईजेड के भीतर मजदूरों के अधिकारों को लेकर कभी कोई बात नहीं करते। करें भी कैसे? खुद उनके राज वाले पश्चिम बंगाल में एक नहीं कई-कई एसईजेड बन रहे हैं। इससे लाल कलगी वाले संसदीय बात-बहादुरों की वर्गीय दृष्टि का एक बार फिर पर्दाफाश हो गया है।

पूँजीवादी विकास के साथ-साथ भारत की खेती का भारी हिस्सा बड़े फार्मरों, एग्री-बिजनेस के स्वामी देशी-विदेशी कॉरपोरेट घरानों और राजकीय मालिकाने वाले संस्थानों के हाथों में चला जायेगा–इस सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता। अगर ऐसा ही होने वाला हो तो भी सर्वहारा वर्ग के हिरावल इस प्रक्रिया को रोकने या मद्धम करने की कोशिश भला क्यों करें? इस पूरी प्रक्रिया में होने वाली नंगी-निरंकुश लूटमार को उजागर करना और उसके खिलाफ मेहनतकश आबादी को संगठित करते हुए पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध दूरगामी संघर्ष के लिए तैयार करना ही उनका रास्ता हो सकता है। किसान आबादी का ध्रुवीकरण ज्यादा से ज्यादा तीखा होते जाना ऐतिहासिक दृष्टि से तो एक प्रगतिशील कदम है और उसे रोकने की कोशिश करना प्रतिगामी कदम होगा। उदारीकरण की नीतियों का विरोध यह बात साफ करते हुए होना चाहिए कि विश्व इतिहास की यही तार्किक गति है और अगर पूँजीवाद का नाश सर्वहारा क्रान्ति द्वारा नहीं किया गया तो वह इसी दिशा में आगे बढ़ेगा। पूँजीवादी चौहद्दी में कोई दूसरा विकल्प नहीं है, अगर कोई विकल्प है तो वह है समाजवाद।

सरकार का निजीकरण

'साम्राज्यवाद पूँजीवाद की चरम अवस्था' में लेनिन ने कहा था, "जब एक बार इजारेदारियाँ बन जाती हैं और वे पूँजी की भारी मात्रा को नियंत्रित करने लगती हैं तो समाज में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी घुसपैठ हो जाती है।" 'राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त' इस बात की और अधिक व्याख्या करती है, "उच्च एकाधिकारी लाभ निचोड़ने की गरज से मेहनतकश जनता का और अधिक शोषण व उत्पीड़न करने के लिए वित्तीय पूँजी राज्य की आर्थिक प्राणशक्ति पर ही नहीं वरन राजनीतिक शक्ति को नियंत्रित करने के लिए भी हाथ-पैर मारती है; वित्तीय समूह उच्चपदस्थ अधिकारियों और विधायिकाओं के सदस्यों को घूस देते हैं जिससे वे राज्य मशीनरी को नियंत्रित करने के लिए उनके भोंपू के रूप में कार्य करें। कभी-कभी वे व्यक्तिगत रूप से भी राज्य में नेतृत्वकारी स्थिति हथिया लेते हैं।"

देशी पूँजीवाद का यह रूप वैसे तो भारत में शुरू से ही रहा है, लेकिन 1990-91 की नयी आर्थिक नीतियों के बाद तो यह नग्न रूप में सामने आया है। पिछले डेढ़ दशक से और खासतौर पर वर्ष 2000 के बाद भारत के दैत्याकार पूँजीवाद घरानों का संसद के अन्दर सीधे घुसने का प्रयास (सांसद के रूप में) और विशेषतौर पर राज्यसभा के अन्दर विराजमान होने को भारत की आम जनता ने गौर से देखा है। इन पूँजीपतियों ने सांसद कक्षों को अपना "कम्पनी दफ्तर" जैसा बनाकर अपने हितों को बखूबी साधा है। इन पूँजीपतियों में से कुछ का उनके राजनीतिक समर्थकों के साथ यहां जिक्र करना दिलचस्प होगा। बजाज ऑटो का मालिक राहुल बजाज शिव सेना और राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के समर्थन से महाराष्ट्र से राज्यसभा सांसद चुना गया है, बी.पी.एल. ग्रुप के राजीव चंद्रशेखर को कर्नाटक की सत्तारूढ़ जनता दल (सेक्युलर) और भाजपा गठजोड़ का समर्थन हासिल है। ऊपरी सदन को सुशोभित करने वाले कॉरपोरेट दैत्यों में से एक हैं शराब कंपनी और किंगफिशर एअरलाइन्स के मालिक विजय माल्या जो कि कर्नाटक से राज्यसभा सांसद बनने के बाद सुब्रमण्यम स्वामी की अगुवाई में चलने वाली जनता पार्टी के कार्यकारी अध्यक्ष बन गये। रिलायंस उद्योग के मालिक अनिल अम्बानी 2004 में समाजवादी पार्टी के समर्थन से राज्यसभा में पहुंचे। इसी लम्बी सूची में आर.पी. गोएनका और राजकुमार धूत, ललित सूरी, कई अखबारों के मालिक विजय दारदा भी भारतीय राजनीति के साथ सीधे रूप में जुड़ हुए हैं। बात यही खत्म नहीं होती, संसद सदस्य होने के साथ-साथ ये लोग अहम पदों पर भीआसीन हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे पदों पर सुशोभित हैं जहां उन्हें अपने निजी हितों को पूरा करने की पूरी आजादी। जैसे विजय माल्या 'स्टैण्डिंग कमेटी ऑन इण्डस्ट्रीज' और 'कंसलटेटिव कमेटी ऑन सिविल एविएशन' के सदस्य है, अखबार समूह के मालिक विजय दारदा 'संचार माध्यमों, सूचना तकनीक और सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की स्थायी कमेटी' और 'तेल एवं प्राकृतिक गैस मंत्रालय' के सदस्य हैं। अब तो हर कोई समझ सकता है कि ये लोग इन पदों पर आसीन होकर जनता की कैसी सेवा कर रहे होंगे। विजय माल्या के बारे में, जब वह जनता दल (यूनाइटेड) के साथ थे, शरद यादव का ही यह बयान है कि माल्या को राष्ट्रीय मुद्दों से कोई सरोकार नहीं था, लेकिन इस बात में दिलचस्पी थी कि नई दिल्ली सहित पार्टी कार्यालय को 'कॉरपोरेट स्टाइल' का कैसे बनाया जाए।

भले ही राजनीति में पूँजीपतियों का दखल अब उभरकर सामने आया है, परन्तु इसकी जड़ें काफी पुरानी हैं। कॉरपोरेट नेताओं के राजनीतिक नेताओं के साथ सम्बन्धों का इतिहास काफी लम्बा है। मुक्ति संग्राम के दौरान ही जमनालाल बजाज डेढ़ दशक तक 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के खजांची रहे, 1942 तक जब तक कि वह "स्वर्ग" नहीं पहुंच गये। जी.डी.बिड़ला और के. के. बिड़ला, यानी बिड़लाओं की दो पीढ़ियों की कांग्रेस के साथ ऐतिहासिक एकजुटता रही है।

और आजादी के बाद?... शहीदे आजम भगतसिंह के शब्दों में कहें तो चमड़ी का रंग बदल गया, और कुछ नहीं बदला।

उत्तर प्रदेश का उदाहरण लें। राजनीति में आने से अनिल अंबानी को करोड़ों का सीधा फायदा हुआ। अंबानी के थर्मल पॉवर प्रोजेक्ट को लगाने के लिए सरकार आवश्यक जमीन खरीदने के लिए जमीन की कुल कीमत का 60 प्रतिशत देगी। इस प्रोजेक्ट के लिए मुकेश अंबानी की कम्पनी से गैस बेची जायेगी। इस कम्पनी में शेयरों का एक बड़ा प्रतिशत सरकार का है और यह अनिल अंबानी को कौड़ियों के भाव गैस बेचेगी। मतलब यह कि दोनों भाई मिलकर जनता का पैसा उड़ायेंगे। हालाँकि आपसी लड़ाइ में अब गैस का मामला फिलहाल खटाई में पड़ गया लगता है।

वर्ष 2002 में राज्यसभा के लिए नामजदगी के समय विजय माल्या ने एक साक्षात्कार में साफ-साफ शब्दों में कहा था कि चुने जाने के बाद वह शराब पर लगाये जाने वाले भारी करों और व्यापार रुकावटों को हटाये जाने की माँग सदन में उठाएगा। साफ है कि वह अपने निजी हित पूरे करना चाहता था। दिसम्बर 2005 में हरियाणा में 'विशेष आर्थिक जोन' बनाने के लिए एक बैठक हुई। खास बात यह है कि 'रिलायंस इण्डस्ट्री' और 'हरियाणा राज्य उद्योग और भवन विकास कॉरपोरेशन' के बीच यह बैठक हुई, जिसके कर्ता-धर्ता रिलायंस के कारपोरेट प्रधान डा. शंकर अडवाल थे।

एक और बात जो देखने में आयी है, वह है—इन पूँजीपतियों का "समाजसेवा" के लिए आगे आना और फिर इस "समाजसेवा" की सीढ़ी पर चढ़कर राजनीति में प्रवेश करना। इस एन.जी.ओ. मार्का समाजसेवा की कुत्ता दौड़ में विजय माल्या बाकी सबको पीछे छोड़ता हुआ दिखायी देते हैं। उनका राजनीति में प्रवेश 'गरीबी हटाओ' जैसे नारे उछालते और कुछ एन.जी.ओ छाप तमाशों के साथ हुआ। इसी तरह जैसे रिलायंस भी अपने 'विशेष आर्थिक जोन' में "लोगों के लिए" बढ़िया अस्पताल, स्कूल-कॉलेज इत्यादि बनाने की बात करती है। समाजसेवा की रेवड़ी-गजक से लुभाते हुए अन्य पूँजीपति भी इस दौड़ में हांफते हुए अक्सर ही अखबारों और टीवी चैनलों पर दिखायी पड़ जाते हैं।

भारतीय मज़दूर वर्ग के खून पसीने की कमाई पर खड़े किये गये सार्वजनिक क्षेत्र को आज कौड़ियों के मोल देशी-विदेशी पूँजीपतियों को बेचा जा रहा है। भारतीय पूँजीपति वर्ग आजादी के समय इतना ताकतवर नहीं था कि वह देश का औद्योगिक ढाँचा अपने बलबूते खड़ा कर लेता, इसलिए आम मेहनतकश जनता की कमाई को लगाकर रेल, डाक, बिजली, सड़कों का ताना-बाना, इस्पात कारखाने वगैरह बनाए गए। लेकिन जैसे ही पूँजीपति वर्ग ताकतवर हुआ उसने इन सबके निजीकरण की मुहिम तेज की और सारे मलाईदार उद्योगों को कौड़ियों के मोल हड़पना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं, अब उसने सीधे-सीधे सरकार में भी घुसना शुरू कर दिया है। वैसे तो सारी ही बुर्जुआ सरकारें पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी होती हैं, लेकिन अब तो सरकार का सीधे निजीकरण शुरू हो गया है।

—अजय पाल

लोगों का खून चूसकर फलता-फूलता लोकतंत्र

दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र आज एक घिनौने लूटतंत्र में तब्दील हो चुका है। सत्ताधारी वर्ग जनता को लूटकर अपनी तिजोरियाँ भरने और जनता की मेहनत की कमाई पर ऐशो-आराम करने के लिए तरह-तरह की तरकीबें निकाल रहे हैं। हाल ही में सरकार ने सांसदों के वेतन और भत्तों में बढ़ोत्तरी के प्रस्ताव को स्वीकार करके गुण्डों और अपराधियों के प्रति अपना श्रद्धा-भाव जाहिर किया है। जिस देश की सरकार अपने लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य और पेयजल जैसी बुनियादी जरूरतें भी उपलब्ध नहीं करवा पाती है वह हर तीन-चार साल में सांसदों पर होने वाले खर्च को बढ़ाती ही जा रही है। आम जनता की कमाई पर टिका लोकतंत्र का यह बेहद खर्चीला ढाँचा अपने पूरे वहशीपन के साथ लोगों का खून चूसने में लगा हुआ है।

सांसदों के वेतन और भत्तों में बढ़ोत्तरी के जिस प्रस्ताव को सरकार ने मंजूर किया है उसके अनुसार सांसदों का मासिक वेतन 12 हज़ार रुपये से बढ़कर 16 हज़ार रुपये हो जायेगा। निर्वाचन क्षेत्र भत्ता 10 हज़ार से बढ़कर 20 हज़ार हो जायेगा। दफ्तर खर्च जो अभी 14 हज़ार है उसमें अलग से 23 हज़ार और मिलेंगे। 13 रुपये प्रति किमी के हिसाब से यात्रा में छूट मिलेगी जो पहले 8 रुपये प्रति किमी थी। निठल्ली बहसबाजी के राष्ट्रीय अड्डे यानी संसद में सत्र के दौरान कोरी बकवास करने, ऊँघने और थुक्का-फजीहत करने के लिए "माननीय" सांसदों को प्रतिदिन 5 सौ रुपये की जगह 1 हज़ार रुपये मिलेंगे। सांसदों का डाक भत्ता 1 हज़ार से बढ़कर 2 हज़ार हो जायेगा। सांसद अब हर साल 32 की जगह 34 हवाई यात्राएँ कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त सांसदों को पहले से मिल रही सुविधाओं की एक लम्बी फेहरिस्त है। वे प्रथम श्रेणी की अनगिनत ऐसी यात्राएँ कर सकते हैं। दिल्ली में सांसदों को मुफ्त आवास उपलब्ध कराया जाता है। संसद सदस्यता समाप्त होने पर भी अनेक पूर्व सांसद सरकारी आवासों में शान के साथ डटे रहते हैं। गरीबों की झुग्गियाँ तो मौके-बेमौके उजाड़ दी जाती हैं पर बाहुबली सांसदों को सरकारी आवासों से निकालने की हिम्मत कौन कर सकता है। बिजली की किल्लत और बढ़ती दरों की मार झेलने वाली जनता को क्या पता कि उसके बेशर्म मुफ्तखोर सांसदों को 50 हज़ार यूनिट तक मुफ्त बिजली दी जाती है। जनता तो बस यही मिन्नत करती है कि निजी कम्पनियाँ कहीं उसका बिजली कनेक्शन न काट दें।

अगर इतने से ही आपको पसीने आ गये हों तो यह भी जान लीजिए कि प्रत्येक सांसद को 1.7 लाख फोन काले मुफ्त उपलब्ध करायी जाती है। और इसमें भी बढ़ोत्तरी की जानी है। इसके अलावा हर सांसद को दो सेल फोन भी दिये जायेंगे।

प्रत्येक पाँच वर्ष और कभी-कभी तो छः-छः महीनों में होने वाले आम चुनावों में जनता के करोड़ों रुपये बर्बाद करके गुण्डो-अपराधियों की जो फौज संसदीय सूअरबाड़े में घुस जाती है उसका पूरा ध्यान अपने लिए सुख-सुविधाएँ बटोरने पर ही लगा रहता है। समाज की किसी भी उत्पादक कार्रवाई से कटी हुई इस जमात पर पहले 855 करोड़ रुपये खर्च होते थे। अब इनपर 60 करोड़े रुपये का अतिरिक्त खर्च होगा। बताने की जरूरत नहीं कि यह जनता की गाढ़ी कमाई को लूटकर ही किया जायेगा। इसीलिए तो इस व्यवस्था को लूटतंत्र कहा जाता है क्योंकि जनता की कमाई पर ऐश करने वाले सांसद और विधायक जनता के बजाय उन पूँजीपतियों के हित में कानून बनाते हैं जिनकी वे दलाली करते हैं। दुनिया की सभी पूँजीवादी व्यवस्थाएँ ऐसे मुफ्तखोरों को पालती हैं जो लोगों को भरमाते-बरगलाते हैं और पूँजीपतियों की सेवा करते हैं। पूँजीवादी लोकतंत्र का यही असली चरित्र है। इसे सुधारा नहीं जा सकता है। इस परजीवी व्यवस्था को सिर्फ़ मेहनतकश लोगों की क्रान्तिकारी पहलकदमी से ही छिन्न-भिन्न किया जा सकता है ताकि इसके स्थान पर एक स्वस्थ मानव केन्द्रित सामाजिक व्यवस्था कायम की जा सके।

—जयपुष्प

संसद और विधानसभाएं गुण्डों, डकैतों, वेश्यागामियों और तस्करों के अड्डे बन चुके हैं! इनकी असलियत सामने आ गयी है! सांसद और विधायक पूंजीपतियों की सत्ता के चाकर हैं।

दोगले और पतित भारतीय पूंजीवाद के चरित्र के अनुरूप ही इनका भी चरित्र है।

भारतीय पूंजीवादी जनतंत्र पूंजीपतियों की तानाशाही है।

अरबों के खर्च से होने वाले चुनाव जनता के साथ धोखाधड़ी है!

इनके खिलाफ उठो! संगठित हो जाओ! क्रान्ति की लम्बी और कठिन तैयारी में लग जाओ!!

हम तमाम इन्साफपसन्द, बहादुर और विवेकशील नागरिकों का आह्वान करते हैं!

हम तमाम मेहनतकश लोगों का आह्वान करते हैं!

अपने देश में और पूरी दुनिया में करोड़ों प्रवासी मजदूरों की नारकीय जिन्दगी

पिछले दिनों इटली की सीमा में गैरकानूनी ढंग से घुसने की कोशिश कर रहे 30 मज़दूरों की नाव डूबने से मौत हो गयी। इनमें से अनेक भारत के थे। इससे कुछ ही दिन पहले मेक्सिको से अमेरिका जा रहे पचास से अधिक मजदूर दर्दनाक मौत के शिकार हुए। अमेरिका में काम दिलाने का वादा करके गैरकानूनी तरीके से उन्हें ले जा रहे ठेकेदारों ने सौ से अधिक लोगों को एक बन्द ट्रक में ठूंसा हुआ था। दम घुटने पर जब इन लोगों ने शोर मचाया तो ठेकेदार ट्रक छोड़ कर भाग गये। पुलिस ने जब ट्रक खोला तो 50 लोगों की मौत हो चुकी थी और जो जीवित बचे थे उनकी भी दशा बेहद खराब थी। ऐसी घटनाओं की खबरें लगभग हर सप्ताह आती हैं। अपने देशों में बेरोजगारी और गरीबी से तंग लोगों को अमीर मुल्कों में खुशहाल जिंदगी के सपने दिखाकर ले जाया जाता है। जान पर खेलकर जो लोग यूरोप या अमेरिका पहुंच भी जाते हैं उनमें से ज्यादातर छिपते-छिपाते बेहद खराब हालात में जीते हुए अपना शोषण कराने को मजबूर होते हैं।

दुनिया भर में करोड़ों प्रवासी मज़दूर दूसरे मुल्कों में काम कर रहे हैं जिनमें से आधी महिलाएँ हैं। साम्राज्यवादी देशों में प्रवासियों के लिए बने सख्त कानूनों के कारण इनमें से अधिकांश मज़दूर गैर-कानूनी ढंग से रहते हुए अमानवीय स्थितियों में जीते हैं और न सिर्फ उनके श्रम का शोषण होता है बल्कि उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित भी किया जाता है।

पूँजीवादी विश्व-व्यवस्था में पूँजी को बेरोकटोक किसी भी देश में प्रवेश करने, सभी राष्ट्रीय सीमाओं को ध्वस्त करते हुए किसी भी देश में संसाधनों और वहाँ की जनता की मेहनत की लूट- खसोट करने की आजादी है। भूमंडलीकरण के दौर में यह सिलसिला और भी तेज हो गया है। लेकिन जब श्रम की गतिशीलता का सवाल आता है तो इन्हीं साम्राज्यवादी देशों की सरकारें प्रवासी मजदूरों को रोकने, उनके जीवन को दूभर बना देने के लिए सख्त संरक्षणवादी बन जाती हैं, हर तरह की हिंसा का सहारा लेती हैं। एक ओर प्रवासी मज़दूरों के श्रम का बुरी तरह शोषण किया जाता है, दूसरी ओर उन्हें गैरकानूनी निवासी का दर्जा देकर अमानवीय परिस्थितियों में जीने और काम करने के लिए मजबूर किया जाता है।

श्रम के प्रति इस नीति ने इंसानों की तस्करी को जबर्दस्त मुनाफे का धंधा बना दिया है। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) के अनुसार इस समय दुनिया भर में मानव तस्करी के शिकार 24.5 करोड़ लोग शोषण की स्थितियों में काम कर रहे हैं। अनुमान है कि हर वर्ष छह से आठ लाख महिलाएँ, पुरुष और बच्चे तस्करी द्वारा अन्तरराष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार ले जाये जाते हैं। तस्करी के द्वारा ले जाई जाने वाली महिलाओं को वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर किया जाता है या फिर वे घरेलू नौकरानियों के रूप में या स्वेटशॉप (बेहद कम मज़दूरी पर काम कराने वाले असंगठित क्षेत्र के कारखाने) में मज़दूरी के लिए बाध्य की जाती हैं। मानव-तस्करी अब नशीली दवाओं और हथियारों की तस्करी के बाद तीसरा सबसे कमाऊ अवैध कारोबार बन चुका है और सालाना 7 से 12 अरब अमेरिकी डॉलर की कमाई करता है। यह आंकड़ा केवल व्यक्तियों की पहली बिक्री से होने वाले मुनाफे को दर्शाता है। आईएलओ का अनुमान है कि जब शिकार व्यक्ति गंतव्य देश पहुंच जाते हैं, तो संगठित आपराधिक गिरोह उन्हें बेचकर प्रति वर्ष 32 अरब डॉलर की अतिरिक्त कमाई करते हैं—इसमें से आधी कमाई अमीर देशों में होती है और एक तिहाई एशिया में।

यूरोपीय संघ के छह देशों—जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, पोलैंड, स्पेन और इटली प्रवासी मज़दूरों के लिए एक "एकीकरण अनुबंध" पर हस्ताक्षर करने को अनिवार्य बनाने पर विचार कर रहे हैं। इसके तहत प्रवासी मज़दूरों को इस आशय के एक अनुबंध पर दस्तखत करने होंगे कि वे उस देश की भाषा सीखेंगे और वहाँ के सामाजिक तौर-तरीकों के अनुसार अपने को ढाल लेंगे—अन्यथा उन्हें किसी भी गलती पर देश से निष्कासित किया जा सकता है।

अमेरिकी संसद में पिछले दिनों पारित एच.आर. 4437 नाम का कानून पूरे कानूनी कागजात के बिना रह रहे मज़दूरों को अर्द्ध-अपराधी का दर्जा देता है जिन्हें न केवल निष्कासित किया जा सकता है बल्कि जेल भी भेजा जा सकता है। प्रवासी मज़दूरों को तरह-तरह से धमकाने, आतंकित करने और उनके किसी भी प्रतिरोध को कुचलने के लिए अमेरिका के कई शहरों में सक्रिय "मिनटमेन" नाम के नव फासिस्ट नस्लवादी गिरोहों को सत्ता का खुला समर्थन प्राप्त है।

अमरीका की समृद्धि उन लाखों दास मज़दूरों के बिना नहीं हो सकती थी जिन्हें जहाजों में भर-भर कर अफ्रीका और एशिया से लाया गया था। आज भी अमेरिका और यूरोप के पूँजीपतियों में प्रवासी मज़दूरों के श्रम को निचोड़ने की वही नृशंस हवस बरकरार है। अमेरिकी सरकारी अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष लगभग डेढ़ लाख चीनी नागरिक अमेरिका भाग रहे हैं और हर साल एक करोड़ से ज्यादा प्रवासी ज्यादातर तीसरी दुनिया के देशों से भाग-भागकर अमेरिका और यूरोप के विभिन्न देशों में अभिशप्त जिंदगी जीते हुए वहाँ की समृद्धि को बढ़ा रहे हैं।

तीसरी दुनिया के देशों से गरीब-बदहाल लोग जान पर खेलकर यूरोप और अमेरिका पहुँच रहे हैं तो इसका सबसे बड़ा कारण साम्राज्यवादी देशों की लुटेरी नीतियों और उनके जूनियर पार्टनर, तीसरी दुनिया के देशों के पूँजीवादी शासकों द्वारा अपने देश की जनता के खिलाफ आक्रामक लुटेरी नीतियाँ की दोहरी मार ही है। इसी मार के चलते इन देशों के भीतर भी गाँवों और छोटे शहरों-कस्बों से उजड़कर भारी आबादी बड़े शहरों की ओर जा रही है और वहाँ की झुग्गी बस्तियों और फुटपाथों पर नारकीय हालात में रहते हुए खट रही है।

दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता जैसे महानगर गरीब मज़दूरों की भारी आबादी के बिना जगमगा नहीं सकते। इन शहरों के कारखानेदारों-व्यापारियों को सस्ते मज़दूर चाहिए, यहाँ के अमीर और मध्यवर्गीय परिवारों को घरेलू नौकर और आयाएँ चाहिए, कार-टैक्सी ड्राइवर चाहिए, ठेले-खोमचे-रिक्शे वाले चाहिए, तमाम तरह के छोटे-मोटे काम कम से कम पैसे पर करने वाले लोग चाहिए। इनके बिना एक दिन भी उनका काम नहीं चल सकता। लेकिन यही लोग इस गरीब आबादी को दिनो-रात कोसते रहते हैं कि ये लोग उनके शहर को गन्दा कर रहे हैं, अपराध बढ़ा रहे हैं। ठीक इसी तर्ज पर तमाम अमीर देशों को तीसरी दुनिया के प्रवासी मज़दूरों की जरूरत है। ये लोग उनके अपने देश के मज़दूरों के मुकाबले बेहद कम दामों पर हर तरह का काम करने को तैयार हो जाते हैं, उन्हें किसी तरह की सुरक्षा, बीमा, चिकित्सा सुविधा, पेंशन आदि नहीं देनी पड़ती और मनमाने ढंग से काम कराया जा सकता है। जर्मनी में लाखों तुर्की मज़दूरों, फ्रांस में लाखों-लाख उत्तरी अफ्रीकी मज़दूरों, ब्रिटेन में कैरीबियन और दक्षिण एशियाई देशों के मज़दूरों तथा अमेरिका में करोड़ों की संख्या में सारी दुनिया के गरीब देशों के मज़दूरों के बिना इन देशों का काम नहीं चल सकता। यही वजह है कि जब ये लोग किसी तरह वहाँ पहुँच जाते हैं तो उन्हें काम पाने में कोई कठिनाई नहीं होती, लेकिन उन्हें वहाँ रहने और काम करने का कानूनी अधिकार नहीं दिया जाता। इस वजह से वे लगातार डर के साये में जीते हैं और अपने शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज भी नहीं उठा सकते।

बेहतर जिंदगी का सपना लेकर विदेश जाने वाले ज्यादातर मेहनतकश लोगों को जल्दी ही असलियत समझ में आ जाती है। उन्हें अपने देश के मुकाबले थोड़ी ज्यादा मज़दूरी तो मिल जाती है लेकिन विदेश में रहने के खर्चों और घर पैसे भेजने की मजबूरी के कारण वे जैसे-तैसे ही गुजारा करते हैं। ऊपर से पुलिस और नवफासिस्ट गिरोहों के हमलों का खतरा लगातार बना रहता है।

साम्राज्यवादी देशों के भीतर बढ़ती बेरोजगारी के कारण वहाँ की आम आबादी का एक हिस्सा तीसरी दुनिया के इन मेहनतकश लोगों को ही अपना दुश्मन समझने लगता है, उसे लगता है कि इन्हीं लोगों के कारण उसे रोजगार नहीं मिल रहा। अंधराष्ट्रवादी और नवफासिस्ट ताकतें इस नफरत को भुनाने के लिए इसे हवा देती रहती हैं। लेकिन प्रवासी मज़दूरों ने भी अब अपने हक के लिए लड़ना शुरू कर दिया है। पिछले दिनों फ्रांस में दो अफ्रीकी किशोरों की पुलिस से बचने के दौरान हुई मौत के बाद वहाँ कई दिनों तक जो उग्र प्रदर्शन होते रहे, वे प्रवासी मज़दूरों में बरसों से दबे हुए गुस्से का ही नतीजा थे। अमेरिका के कई शहरों में भी पिछले दिनों प्रवासियों के खिलाफ बने नए कानूनों के विरुद्ध विशाल प्रदर्शन हुए जिनमें अमेरिकी नागरिकों की भी अच्छी-खासी संख्या ने हिस्सा लिया।

भूमंडलीकरण के दौर में पूँजीवाद के न चाहते हुए भी दुनिया के मज़दूर एक-दूसरे के करीब आ रहे हैं। पूँजीवाद के तहत रोजगार के लिए एक-दूसरे से पैदा होने वाली होड़ के कारण आज उनके बीच दूरियाँ हैं, लेकिन जब वे समझेंगे कि वे सभी पूँजीवाद की लुटेरी नीतियों के शिकार हैं तो एक-दूसरे के खिलाफ लड़ने के बजाय अपने साझा दुश्मन पूँजीवाद के खिलाफ एकजुट होंगे। लुटेरों की इच्छा के विरुद्ध ऐसा होने की जमीन तैयार हो रही है।

– सत्यप्रकाश

मजदूरों के लिए असली जनरल नालेज

चुनाव क्या है?

- जनता की गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपये खर्च करके जनता के ही साथ धोखाधड़ी!

चुनावी नेता क्या हैं?

- पूंजीपतियों के कुत्ते, साम्राज्यवादियों के टट्टू!

आज चुनावी पार्टियों के सफल नेता कौन हो सकते हैं?

- चोर, पाकेटमार, ठग, बटमार, तस्कर, दंगाई, गुण्डे, वेश्यागामी, लोफर-आवारे, दलाल, ठेकेदार, सिनेमा के भांड, खूनी, माफिया सरगना और धर्म के व्यापारी!

संसद क्या है?

- सुअरबाड़ा! गुण्डों-डकैतों -वेश्यागामियों-भ्रष्टाचारियों का अड्डा। यही आज के पूंजीपतियों के राजनीतिक प्रतिनिधि हैं!

वोट कैसे पड़ते हैं?

- जाति-धरम पर जनता को बांटकर, दंगे भड़काकर, नोटों से खरीदकर, बंदूकों से डराकर, गरीबों को लालच देकर!

संसद-विधनसभाओं में क्या होता है?

- कुछ दिखावटी बहसें, मारपीट, जूतम-पैजार, और असली काम होता है जनता को लूटने-कुचलने के कानून बनाने का।

सरकार क्या करती है?

- देशी-विदेशी पूंजीपतियों की सेवा, उनकी लूट को बढ़ाना और व्यवस्थित करना, जनता को कुचलना, धोखा देना।

भारतीय जनतंत्र क्या है?

- पूंजीपतियों की तानाशाही!

तथाकथित जनतांत्रिक संस्थाएं और न्यायपालिका क्या हैं?

- पूंजीवादी शासन के दिखाने के दांत!

और खाने के दांत?

- फौज, पुलिस, जेल, नौकरशाही!

न्यायपालिका क्या करती है?

- थैलीशाहों के हित में न्याय का व्यापार! पूंजीवादी न्याय की नजर में गरीब होना ही एक अपराध है! शोषण पूंजीपतियों का जन्मसिद्ध अधिकार है! जुल्म को चुपचाप सहना शरीफ नागरिक का गुण है। जुल्म का विरोध सबसे संगीन जुर्म है!

इस पूरे ढांचे का विकल्प क्या है?

- जुल्म के खिलाफ मेहनतकशों और आम लोगों की एकता! इंकलाबी संगठनों का निर्माण! मौजूदा निजाम के खिलाफ आम बगावत! पूंजीवाद का नाश!

समाजवाद के उसूलों पर, न्याय और समता पर आधरित एक नये भारत का निर्माण!

नई भरती करो!

(बोग्दानोव और गूसेव के नाम लेनिन के एक पत्र से, 11 फरवरी, 1905)

व्ला. इ. लेनिन

भारत में सर्वहारा वर्ग की एक क्रान्तिकारी पार्टी के गठन की कोशिशों को, अपने शुरुआती दौर में, आज से करीब पैंतीस वर्षों पहले ही झटका लगा और उसके बाद बिखराव की प्रक्रिया ही मुख्य प्रवृत्ति बनी रही। इसका बुनियादी कारण विचारधारा की कमजोरी था और उसी का एक नतीजा यह भी रहा कि भारत की परिस्थितियों और क्रान्ति की रणनीति के प्रश्न पर भी क्रान्तिकारी एक राय पर नहीं पहुच सके। गड़बड़ियाँ संगठनों के ढाँचे और कार्यपद्धति में भी रहीं जो विचारधारा की कमजोरी से ही जन्मी थीं और जिनके कारण न तो सही बहस-मुबाहसे का माहौल बना, न ही कार्यकर्ताओं की सही शिक्षा-दीक्षा हुई। आन्दोलन में "वामपंथी" दुस्साहसवाद और अर्थवाद की प्रवृत्तियाँ लगातार एक या दूसरे रूपों में मौजूद रहीं।

विश्व पूँजी के चौतरफा हमले और प्रतिक्रियावाद के विश्वव्यापी उभार के मौजूदा दौर में, पिछले लगभग दस-पन्द्रह वर्षों के दौरान जो नई चीज सामने आई है, वह यह कि क्रान्तिकारी ढाँचों के बिखराव की जारी प्रक्रिया के साथ ही ज्यादातर संगठनों के क्रान्तिकारी सार-तत्व में भी क्षरण होने लगा है जो जारी प्रक्रिया का ही एक नतीजा है और यह बात ज्यादा घातक है। संगठनों का मध्यवर्गीयकरण-सा हो रहा है, नेतृत्व में बैठे लोगों में कठमुल्लावाद और कूपमण्डूकता का बोलबाला है। ऐसे में, मुख्य काम यह बन गया है कि जिम्मेदार संगठन अपने ढाँचों का क्रान्तिकारी पुनर्गठन करें, कतारों में मज़दूरों के बीच से नई भरती करें, नई भरती से आने वाले युवाओं को श्रमसाध्य जीवन बिताते हुए मेहनतकश जनता के बीच काम करने और उनसे एकरूप हो जाने पर बल दें तथा उत्तराधिकारियों की तैयारी पर विशेष जोर दें। कहा जा सकता है कि पार्टी निर्माण और पार्टी गठन के दो एक-दूसरे से जुड़े पहलुओं में आज पार्टी निर्माण का पहलू प्रधान है और पार्टी-गठन का पहलू इसके मातहत हो गया है।

हमें क्रान्तिकारी कतारों में नई भरती पर विशेष जोर देना होगा। मज़दूरों के बीच से—विशेषकर युवा मज़दूरों की भरती करनी होगी। युवाओं के बीच से भी भरती करनी होगी। इस काम में मज़दूर वर्ग का अखबार एक अहम भूमिका निभा सकता है। उसे निभाने में ही इसकी सार्थकता है।

हम यहाँ लेनिन के एक पत्र का महत्वपूर्ण अंश प्रकाशित कर रहे हैं। सभी साथी इसे गौर से पढ़ें। इसमें सोचने-सीखने के लिए काफी बातें हैं। यह पत्र 1905-07 की पहली रूसी क्रान्ति के ठीक पहले लिखा गया था। बोल्शेविक पार्टी तब काफी छोटी थी और बनने की ही प्रक्रिया में थी। लेनिन को आने वाले तूफानी समय का पूर्वानुमान था और मज़दूर साप्ताहिक पत्र 'व्पेर्योद' के इर्द-गिर्द मज़दूरों-युवाओं को जोड़कर उनके सैकड़ों मण्डल तैयार करने पर उनका विशेष जोर था। 'व्पेर्योद' बोल्शेविक साप्ताहिक अखबार था जो जेनेवा से प्रकाशित होता था और गुप्त रूप से रूस पहुँचाया जाता था। 'ईस्क्रा' अखबार उस समय मेंशेविकों के कब्जे में चला गया था और उनका मुखपत्र बन गया था। —सम्पादक

....'व्पेर्योद' के लिए सहकर्मी चाहिए।*

हमारी गिनती बहुत कम है। यदि रूस से और 2-3 लोग स्थायी तौर पर हमारे लिए लिखने वाले नहीं मिलते, तो फिर 'ईस्क्रा' से संघर्ष की बकवास करने की जरूरत नहीं है। हमें पैम्फ्लेटों और पर्चों की जरूरत है, बड़ी सख्त जरूरत है।

हमें युवा शक्तियाँ चाहिए। मेरी तो राय यह है कि जो लोग यह कहने की जरूरत करते हैं कि लोग नहीं हैं, उन्हें खड़े-खड़े गोली से उड़ा दिया जाये। रूस में लोगों की कोई कमी नहीं है। बस हमें खुलकर और हिम्मत से, हिम्मत से और खुलकर, जी हां, एक बार फिर खुलकर और एक बार फिर हिम्मत से नौजवानों से **डरे बिना** उन्हें भरती करना चाहिए। आज हलचल का समय है। नौजवान ही — विद्यार्थी और उनसे भी बढ़कर युवा मज़दूर — सारे संघर्ष के भाग्य का फैसला करेंगे। निश्चलता की, ओहदों के सामने सिर झुकाने, आदि की अपनी पुरानी आदतों से पिण्ड छुडाइये। नौजवानों से 'व्पेर्योद' वालों के **सैकड़ों** मण्डल बनाइये और उन्हें डटकर काम करने की प्रेरणा दीजिये। नौजवानों को लेकर समिति **तिगुनी** बड़ी कीजिये, पाँच या दस उपसमितियाँ बनाइये, हर ईमानदार और उत्साही व्यक्ति को उनसे सम्बद्ध कीजिये। हर उपसमिति को बिना किसी हीले- हुज्जत के परचे लिखने और छापने का अधिकार दीजिये (किसी ने कुछ गलती की भी, तो कोई डर नहीं : हम 'व्पेर्योद' में "विनम्रता" से ठीक कर देंगे)। क्रान्तिकारी पहलकदमी रखने वाले सभी लोगों को तूफानी गति से संगठित करना और उन्हें काम में लगाना चाहिए। इस बात से मत डरिये कि वे प्रशिक्षित नहीं हैं, इस बात पर मत कँपकँपाइये कि उन्हें अनुभव नहीं है, कि वे विकसित नहीं हैं। पहली बात, यदि आप उन्हें संगठित और प्रेरित नहीं कर पायेंगे, तो वे मेंशेविकों और गपोनों के पीछे चल देंगे और अपनी उसी अनुभवहीनता से पाँच गुना अधिक नुकसान कर बैठेंगे। दूसरे, अब तो घटनाएँ ही उन्हें **हमारी भावना** में शिक्षित करेंगी। घटनाएँ अभी से हर किसी को 'व्पेर्योद' की ही भावना में शिक्षित कर रही हैं।

बस **सैकड़ों** मण्डल संगठित करो, संगठित करो और संगठित करो, समिति की (सोपानक्रम की) सदाशयपूर्ण बेवकूफियाँ एकदम पीछे हटा दो। हलचल का समय है। या तो आप हर संस्तर में हर तरह के, हर किस्म के सामाजिक- जनवादी काम के लिए **नये**, नौजवान, ताजा, उत्साही सैनिक संगठन तैयार करेंगे, या फिर आप "समिति" के नौकरशाहों का यश कमाकर शहीद हो जायेंगे।

मैं 'व्पेर्योद' में इस बारे में लिखूंगा और कांग्रेस में भी बोलूंगा। मैं आपको विचारों के आदान-प्रदान के लिए प्रेरित करने की एक और कोशिश के तौर पर लिख रहा हूँ, इस कोशिश में कि आप दर्जन भर **युवा, ताज़ा** मज़दूर (और दूसरे मण्डलों को संपादक-मण्डल के **सीधे सम्पर्क** में लायें, हालाँकि... हालाँकि, सच्चे मन से कहूँ, तो मुझे कोई उम्मीद नहीं कि आप ये साहसपूर्ण कामनाएँ पूरी करेंगे। बस शायद इतना ही होगा कि दो महीने बाद आप मुझे तार से जवाब देने को कहेंगे कि मैं "योजना" में अमुक परिवर्तनों से सहमत हूँ कि नहीं. .. पहले से जवाब दिये देता हूँ कि मैं सहमत हूँ...

कांग्रेस में भेंट तक।

— लेनिन

पुनश्च। 'व्पेर्योद' को रूस पहुँचाने के काम में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का कार्यभार रखना चाहिए। सेंट पीटर्सबर्ग में ग्राहक बढ़ाने के लिए जोरदार प्रचार कीजिए। विद्यार्थी और खास तौर पर **मज़दूर** अपने पतों पर ही दसियों- सैकड़ों प्रतियाँ मँगायें। इन दिनों के माहौल में इससे डरना बेतुका है। सब कुछ तो पुलिस पकड़ नहीं पायेगी। आधे-तिहाई तो पहुँचेंगे ही और यही बहुत है। नौजवानों के हर मण्डल को यह विचार सुझाइये और वे तो विदेश से संपर्क बनाने के अपने सैकड़ों रास्ते खोज लेंगे। 'व्पेर्योद' को पत्र भेजने के लिए पते अधिक से अधिक लोगों को दीजिए।

हमारे आन्दोलन के आवश्यक काम (अंश)

व्ला. इ. लेनिन

रूसी समाजवाद के पूरे इतिहास ने जो परिस्थिति पैदा कर दी है उसमें सबसे जरूरी काम (ज़ार की) निरंकुश सरकार के खिलाफ़ और राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना है। हमारे समाजवादी आन्दोलन ने एक तरह से निरंकुश शासन के विरुद्ध संघर्ष करने के काम पर सर्वाधिक जोर दिया है। दूसरी तरफ, इतिहास ने स्पष्ट कर दिया है कि समाजवादी चिन्तन का मेहनतकश वर्गों के हिरावल दस्ते से अलगाव रूस में दूसरे तमाम देशों से अधिक है, और यदि यही स्थिति बनी रहती है तो रूस में क्रान्तिकारी आन्दोलन भविष्य में कुछ भी नहीं कर पायेगा। इसी परिस्थिति से वह काम निकलता है जिसे रूस के सामाजिक-जनवाद को पूरा करना है—उसे सर्वहारा वर्ग के आम जन-समुदायों में समाजवाद के विचारों को फैलाना है और उनके अन्दर राजनीतिक चेतना पैदा करनी है, और उसे एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी संगठित करनी है जो स्वतः स्फूर्त मज़दूर आन्दोलन के साथ अटूट रूप से जुड़ी हो। रूस के सामाजिक जनवाद ने इस दिशा में बहुत—कुछ किया है, किन्तु अभी और भी अधिक काम करना बाक़ी है। आन्दोलन की वृद्धि के साथ-साथ, सामाजिक-जनवादियों की गतिविधियों का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है; काम अधिकाधिक विभिन्नता अख्तियार करता जाता है, और आन्दोलन में लगे सक्रिय कार्यकर्ताओं की अधिकाधिक संख्या उन विभिन्न विशेष कामों को पूरा करने के कामों में जुटती जाती है जिन्हें प्रचार और आन्दोलन की दैनिक आवश्यकताए प्रस्तुत करती है। यह प्रक्रिया सर्वथा स्वाभाविक और अनिवार्य है, किन्तु इसकी वजह से इस चीज़ के बारे में हमें विशेष रूप से सतर्क रहना पड़ता है कि वे विशेष गतिविधियाँ तथा संघर्ष के तरीके स्वयं ही लक्ष्य न बन जायें और तैयारी का जो मुख्य और एकमात्र काम है उसके मार्ग में बाधा डालने लगें।

हमारा मुख्य और मूल काम मज़दूर वर्ग के राजनीतिक विकास और राजनीतिक संगठन के कार्य में सहायता पहुँचाना है। इस काम को जो लोग पीछे ढकेल देते हैं, जो तमाम विशेष कामों और संघर्ष के विशिष्ट तरीकों को इस मुख्य काम के अधीन बनाने से इन्कार करते हैं, वे ग़लत रास्ते पर चल रहे हैं और आन्दोलन को भारी नुक़सान पहुँचा रहे हैं और इस काम को सबसे पहले उन लोगों द्वारा पीछे ढकेला जा रहा है जो क्रान्तिकारियों से कहते हैं कि सरकार के विरुद्ध लड़ाई में वे केवल उन षड्यन्त्रकारी मण्डलियों की शक्तियों का ही इस्तेमाल करें जो मज़दूर आन्दोलन से कटी हुई, अलग-थलग पड़ी हैं। दूसरे, उसे पीछे ढकेल रहे हैं वे लोग जो राजनीतिक प्रचार, आन्दोलन और संगठन के सारतत्व तथा उनकी परिधि को सीमित कर देना चाहते हैं; जो मज़दूरों को "राजनीति" का स्वाद उनकी ज़िन्दगियों के केवल असाधारण क्षणों में, केवल विशेष उत्सवों के मौक़ों पर ही चखाना ठीक और सही समझते हैं; जो निरंकुश शासन के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष करने के स्थान पर अत्यन्त अनुनय-विनय पूर्वक आंशिक सुविधाओं की माँगों को पेश करते हैं; और जो इस बात की पार्याप्त रूप से कोशिश नहीं करते कि आंशिक सुविधाओं से सम्बन्धित इन माँगों को उठा कर एक ऐसे स्तर पर ले जाया जाये जिस पर उनके लिए किया जाने वाला संघर्ष निरंकुशशाही के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग की पार्टी का एक व्यवस्थित, अदम्य संघर्ष का स्वरूप ग्रहण कर ले।

सरगम के सारे स्वरों में **राबोचाया मिस्ल** निरन्तर दोहराता रहता है, "संगठित हो!", और "अर्थवादी" प्रवृत्ति के सारे अनुयायी इसी आवाज को प्रतिध्वनित करते हैं। निस्संदेह, इस अपील का हम भी पूरे तौर से समर्थन करते हैं, किन्तु हम यह जोड़ना भी नहीं भूलते कि : संगठित हो—किन्तु केवल पारस्परिक लाभ की सोसायटियों में, हड़ताली कोषों के लिए, तथा मज़दूरों की मण्डलियों में ही नहीं; बल्कि एक राजनीतिक पार्टी में भी संगठित हो; निरंकुश सरकार तथा सम्पूर्ण पूँजीवादी समाज के विरुद्ध संकल्पपूर्ण ढंग से संघर्ष करने के लिए भी संगठित हो। इस प्रकार के संगठन के बिना सर्वहारा वर्ग सचेत वर्ग-संघर्ष के स्तर तक कभी ऊपर नहीं उठ सकेगा; इस प्रकार के संगठन के बिना मज़दूर आन्दोलन बिल्कुल निर्जीव हो जायेगा। केवल कोषों और अध्ययन-मण्डलियों तथा पारस्परिक लाभ की सोसायटियों को लेकर मज़दूर वर्ग अपने महान ऐतिहासिक लक्ष्य को—राजनीतिक और आर्थिक दासता से स्वयं अपने को तथा सम्पूर्ण रूसी जनता को मुक्ति दिलाने के लक्ष्य को कभी पूरा न कर सकेगा। अपने राजनीतिक नेता, अपने ऐसे प्रमुख प्रतिनिधि पैदा किये बिना किसी भी वर्ग ने इतिहास में सत्ता नहीं प्राप्त की है जो आन्दोलन को संगठित और उसका नेतृत्व कर सकते हैं और, रूसी मज़दूर वर्ग ने दिखला दिया है कि इस प्रकार के पुरुष और स्त्री वह पैदा कर सकता है। पिछले पाँच या छह साल में इतने व्यापक रूप से जो संघर्ष फैला है, उसने मज़दूर वर्ग की छिपी हुई महान क्रान्तिकारी शक्ति को उजागर कर दिया है; उसने दिखला दिया है कि सरकार का कठोरतम दमन भी उन मज़दूरों की संख्या को कम नहीं कर पाता जो समाजवाद के लिए, राजनीतिक चेतना और राजनीतिक संघर्ष का विस्तार करने के लिए प्रयत्नशील हैं। इसके विपरीत, इस दमन से उनकी संख्या में वृद्धि ही होती है।

रिपोर्ट **स्मृति संकल्प यात्रा**

भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष की शुरुआत के अवसर पर विभिन्न कार्यक्रम

दिल्ली में एक महीने का सघन कार्यक्रम

''जब हर जुबान पर भगतसिंह का नाम होगा,
तभी देश में नया विहान होगा!''

इसी नारे के साथ शहीद भगतसिंह के विचारों को हर युवा दिल तक पहुँचाने का संकल्प लेकर चल रही स्मृति संकल्प यात्रा के तहत दिल्ली और उसके आस-पास एक महीने का सघन अभियान चलाया गया।

भगतसिंह के जन्मशताब्दी वर्ष की शुरुआत के मौके पर दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा की ओर से पूरे सितम्बर माह में अनेक कार्यक्रमों के जरिए भगतसिंह और उनके क्रान्तिकारी साथियों को याद किया गया और उनके सपनों का भारत बनाने के लिए एक नयी क्रान्ति की राह पर चलने आह्वान किया गया।

इस अभियान की शुरुआत 4 सितम्बर को दिल्ली में ऐतिहासिक कोटला किले के पास शहीद भगतसिंह पार्क में सभा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा आईटीओ से शहीद पार्क तथा रैली से हुई। नोएडा, गाजियाबाद और दिल्ली स्मृति संकल्प यात्रा में शामिल छात्रों-नौजवानों की टोलियाँ 4 सितम्बर की शाम आईटीओ पर एकत्र हुईं जहाँ से जोशीले नारों से आसमान को गुँजाता हुआ युवाओं की रैली शहीद पार्क तक पहुँची। रैली में शामिल युवाओं ने क्रान्तिकारियों के चित्रों के साथ-साथ बड़ी-बड़ी तख्तियाँ उठा रखी थीं जिन पर ऐसे नारे लिखे थे—''नई सदी में नये वेग से परिवर्तन का ज्वार उठेगा!'' "भागो नहीं दुनिया को बदलो!" "नाउम्मीदों की एक उम्मीद—इंकलाब!'' "भगतसिंह का सपना आज भी अधूरा—मेहनतकश और नौजवान उसे करेंगे पूरा!"

पार्क में शहीद भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की प्रतिमा पर माल्यार्पण के बाद हुई सभा में वक्ताओं ने भगतसिंह को याद करते हुए कहा कि आज की नौजवान पीढ़ी को जुल्मो-सितम और लूट पर कायम इस समाज व्यवस्था को उखाड़ फेंककर बराबरी पर टिका नया हिन्दुस्तान बनाने के लिए लड़ना होगा। यही शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

अभिनव, आशीष, प्रसेन, कविता आदि ने कहा कि आजादी के बाद के 60 साल के विकास ने ऊपर की 20 फीसदी आबादी के लिए तो जगमग रंगीनियाँ सजाई हैं मगर 80 फीसदी मेहनतकश आबादी को भूख, अपमान, कमरतोड़ मेहनत और बर्बर शोषण से आज भी मुक्ति नहीं मिली है। उन्होंने कहा कि भगतसिंह ने आगाह किया था कि कांग्रेस के रास्ते से जो आजादी आयेगी उसमें बस गोरों की जगह काले अंग्रेज गद्दी पर बैठ जायेंगे और मजदूरों-गरीब किसानों की हालत में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। वक्ताओं ने लोगों को जेल से नौजवानों के नाम भेजे गये भगतसिंह के उस सन्देश की याद दिलायी जिसमें उन्होंने कहा था कि नौजवानों को क्रान्ति का सन्देश कारखाने के मजदूरों के पास और गाँवों की झोपड़ियों में जाना होगा। सत्यम ने महीने भर दिल्ली और आसपास आयोजित कार्यक्रमों की जानकारी दी।

इस मौके पर 'विहान' सांस्कृतिक दस्ते ने कई क्रान्तिकारी गीत पेश किये। राकेश ने शशि प्रकाश की कविता 'नई सदी में भगतसिंह की याद', कविता ने पाश की कविता 'हम लड़ेंगे साथी' और प्रसेन ने शंकर शैलेन्द्र की कविता 'भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की, देशभक्ति के लिए आज भी सजा मिलेगी फाँसी की' का पाठ किया।

जनपक्षधरता की बिस्तार से चर्चा की। गोष्ठी में समयान्तर पत्रिका के सम्पादक पंकज बिष्ट और गीतकार रामकुमार कृषक भी मौजूद थे।

गोष्ठी स्थल पर मुक्तिबोध की कविताओं में सुन्दर पोस्टरों के साथ ही क्रान्तिकारियों के चित्रों एवं उद्धरणों के पोस्टरों और क्रान्तिकारी साहित्य की प्रदर्शनी भी लगायी गयी थी।

इस मौके पर महान सोवियत फिल्मकार सर्गेई आइजेंस्ताइन की दो फिल्में 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी' और 'अलेक्जेंडर नेव्स्की' दिखायी गयीं तथा छात्रों के बीच उन पर चर्चा की गयी।

भगतसिंह के 100वें जन्मदिवस पर तीन दिन का कार्यक्रम

27-28-29 सितम्बर को 'दिशा' और 'नौजवान भारत सभा' ने दिल्ली के विभिन्न स्थानों पर अनेक कार्यक्रम आयोजित किये।

27 सितम्बर को दिल्ली विश्वविद्यालय के मानसरोवर हास्टल से आर्ट्स फैकल्टी तक जुलूस निकाला गया और विश्वविद्यालय परिसर में सभा तथा संस्कृतिक कार्यक्रम किया गया।

28 सितम्बर को नोएडा, गाजियाबाद और दिल्ली की विभिन्न यात्रा टोलियाँ जन्तर-मन्तर पर इकट्ठा हुईं जहाँ जोरदार सभा की गयी और अनेक क्रान्तिकारी गीत तथा कविताएँ प्रस्तुत की गयीं। सभा को राकेश, अभिनव, रूपेश, कविता, शिवानी, प्रसेन, कपिल आदि ने सम्बोधित किया।

वक्ताओं ने कहा कि सारे सत्ताधारी भगतसिंह के नाम से और उनके विचारों से डरते हैं। सभी सरकारें क्रान्तिकारियों के सपनों और विचारों की हत्या करने और उन्हें दफ्न करने की कोशिशें करती रही हैं। इसलिए वे भगतसिंह को याद करेंगे यह उम्मीद भी नहीं की जानी चाहिए। अपने सच्चे सपूत को सिर्फ आम जनता ही याद करेगी। और सिर्फ याद ही नहीं करेगी उसके सपनों को पूरा करने के लिए इस जुल्म की हुकूमत को तबाह करके एक नया समाज बनायेगी।

29 सितम्बर को दिल्ली के करावल नगर इलाके में अनेक स्थानों पर साइकिल रैली तथा नुक्कड़ सभाएँ करके भगतसिंह का पैगाम लोगों तक पहुँचाया गया।

क्रान्तिकारी साहित्य की प्रदर्शनियाँ तथा व्यापक पर्चा वितरण

स्मृति संकल्प यात्रा के तहत पूरे राजधानी क्षेत्र में नुक्कड़ सभाओं, बस एवं रेल अभियानों के जरिए बड़े पैमाने पर पर्चे बाँटे गये जिसमें छात्रों-युवाओं से आगे आकर नई क्रान्ति के रास्ते पर चलने का आह्वान किया गया।

इस दौरान जगह-जगह 'जनचेतना' की ओर से क्रान्तिकारी साहित्य की छोटी-बड़ी प्रदर्शनियाँ लगायी गयी। दिल्ली विश्वविद्यालय, मुखर्जी नगर, रोहिणी क्षेत्र, जेएनयू परिसर, जिया सराय, आरके पुरम आदि में भारी संख्या में नौजवान और नागरिक इन प्रदर्शनियों में आये तथा क्रान्तिकारी पुस्तकें, पत्रिकाएँ, पर्चे और पोस्टर लेकर गये। इसी क्रम में पटियाला हाउस न्यायालय परिसर में तीन दिन की बड़ी पुस्तक प्रदर्शनी भी आयोजित की गयी।

'पार्टनर, तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है?'

मुक्तिबोध की पुण्यतिथि पर 'दिशा' की गोष्ठी

जनता के कवि और लेखक गजानन माधव मुक्तिबोध की पुण्यतिथि (11 सितम्बर) के अवसर पर 'दिशा' की ओर से दिल्ली विश्वविद्यालय में विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी का विषय प्रवर्तन और संचालन करते हुए आशीष ने कहा कि आज मुक्तिबोध जैसी ईमानदारी और अडिग पक्षधरता के साथ जनता के लिए लिखने वाले कवियों-लेखकों की बहुत बड़ी जरूरत है। उन्होंने कहा कि आज तमाम बड़े-बड़े नाम और भूतपूर्व प्रगतिशील साहित्यकार "अँधेरे में" कविता में वर्णित हत्यारों के जुलूस में बाजा बजाते चल रहे हैं और युवा लेखकों को अपनी गलीज आदर्शहीनता तथा प्रलोभनों से भरमा-भटका रहे हैं। ऐसे में कलम के युवा सिपाहियों के सामने यह चुनौती है कि वे मुक्तिबोध की तरह खुद से पूछें "तय करो किस ओर हो तुम?" उन्हें मुक्तिबोध के ही शब्दों में इस सवाल का जवाब मिलेगा—"अरे, जन-संग ऊष्मा के बिना व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते!" दिल्ली विश्वविद्यालय के डा. आनन्द प्रकाश और डा. रामेश्वर राय ने मुक्तिबोध के साहित्य और उनकी

यतीन्द्रनाथ दिवस के शहादत दिवस पर फिल्म शो

यतीन्द्रनाथ दास के शहादत दिवस (13 सितम्बर) के मौके पर 'दिशा' ने दिल्ली विश्वविद्यालय में क्रान्तिकारी फिल्मों का प्रदर्शन आयोजित किया।

कार्यक्रम की शुरुआत में 'दिशा' के साथियों ने बताया कि लाहौर जेल में क्रान्तिकारियों को राजनीतिक कैदियों का दर्जा दिये जाने की माँग को लेकर 1930 में भगतसिंह के नेतृत्व में जबर्दस्त भूख हड़ताल की गयी थी। दो महीने बीत जाने के बाद भी जब अंग्रेज हुकूमत कोई माँग मानने पर राजी नहीं हुई तो यतीन दास ने पानी पीना भी बन्द कर दिया। अनशन के 63वें दिन वे शहीद हो गये। उनकी कुर्बानी ने सभी क्रान्तिकारियों को और भी जोश से भर दिया और आख़िरकार 90 दिन की भूख हड़ताल के बाद अंग्रेज हुकूमत को झुकना पड़ा।

उन्होंने कहा कि आज भी इस देश में अपने हक के लिए आवाज उठाने वालों को कुचलने के लिए अंग्रेजों के बनाये कानून लागू हैं। आईपीसी-सीआरपीसी से लेकर जेल मैनुअल तक अंग्रेजों का ही बनाया हुआ है। जनता के छिनते राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई को आज और व्यापक बनाना होगा और यतीन दास की शहादत आज की इस लड़ाई में भी हमारे लिए प्रेरणा का अजस्र स्रोत है।

गोरखपुर में दस दिन का अभियान

भगतसिंह के जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर गोरखपुर में दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा की ओर से 4 से 13 सितम्बर तक दस दिवसीय अभियान के तहत शहर के विभिन्न स्थानों पर एक दर्जन से अधिक संकल्प सभाएँ की गयीं।

आजाद चौक, बिछिया पीएसी कैम्प, मेडिकल कॉलेज गेट, सूर्य विहार चौक, शाहपुर, कूड़ाघाट, दाउदपुर, सेंट एण्ड्रयूज कॉलेज गेट, गोरखपुर विश्वविद्यालय आदि में हुई इन सभाओं में बड़ी संख्या में छात्रों-नौजवानों और मेहनतकश लोगों ने हिस्सेदारी की। वक्ताओं ने लोगों को भगतसिंह के संदेश की याद दिलाते हुए कहा कि आजादी के बाद की आधी सदी के दौरान विकास का जो रास्ता चुना गया उसने भगतसिंह की एक-एक बात को सच साबित किया है। जनता की मेहनत को लूट कर मुट्ठी भर मुनाफाखोरों और परजीवी जमातों के ऐशो-आराम का इंतजाम किया गया है और देश को देशी-विदेशी लुटेरों का चरागाह बना दिया गया है। भगतसिंह का जन्मशताब्दी वर्ष हमें याद दिला रहा है कि इस जालिम हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष की तैयारी में अब एक दिन भी देर नहीं करनी चाहिये।

इस दौरान मुहल्लों में प्रभात फेरियाँ निकाली गयीं और सड़कों-चौराहों तथा कार्यालयों में व्यापक पर्चा-वितरण किया गया। दस दिन के अभियान का समापन विश्वविद्यालय गेट पर संकल्प सभा के साथ हुआ।

विचारगोष्ठी

स्मृति संकल्प यात्रा के तहत 15 सितम्बर को गोरखपुर विश्वविद्यालय के संवाद भवन में दिशा की ओर से विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी का विषय था 'आज का समय, युवा और भविष्य का रास्ता'। गोष्ठी के मुख्य वक्ता स्मृति संकल्प यात्रा के संयोजक अरविंद सिंह ने कहा कि आज बाजार की शक्तियों ने नौजवानों के भविष्य का रास्ता रोक रखा है। इस अवरोध को हटाये बिना और एक नए समाज का निर्माण किये बिना नौजवान भविष्य की राह पर आगे नहीं बढ़ सकते। उन्होंने कहा कि नौजवानों को

(पेज 9 पर जारी)

महान जनपक्षर पत्रकार गणेशशंकर विद्यार्थी के जनमदिवस (20 अक्टूबर) के अवसर पर

आगामी मजदूर-महाक्रान्ति

गणेशशंकर विद्यार्थी

यूरोपीय महायुद्ध ने, जिसका श्रीगणेश औद्योगिक तृष्णा के साथ हुआ था और जिसकी समाप्ति भी उसी के साथ हुई, संसार के सामने एक महान व्यापक और अत्यन्त प्रभावशाली आन्दोलन खड़ा कर दिया है। आन्दोलन आर्थिक है, पर है इतना प्रभावशाली कि जीवन के सभी क्षेत्रों की जड़ें हिल उठी हैं। संसार की तीन-चौथाई जनता का यह विकराल, किन्तु भविष्य में अत्यन्त निर्धनता तथा अत्याचार को मिटा देने का उद्योग करने वाला, आन्दोलन न्याय, दया और स्वतंत्रता के तीन परम उच्च आदर्श लेकर चला है। गत 5 शताब्दियों में इस संसार ने जमींदार-शासन ;थ्मनकंसपेउद्ध और पूँजी-शासन ;ब्ंचपजंसपेउद्ध के घोर अत्याचारों को सहा है। मनुष्य के अधिकारों को पूँजीवालों, जमींदारों और स्वयं देश की निरंकुश सरकारों ने बड़ी निर्दयता से ठुकराया और अन्याय तथा अत्याचार को खुले मैदान जारी रखा। इसका एक कारण और था, सरकारों की नकेल पूँजीवालों के हाथों में ही थी, गरीब लोग अशिक्षित और राजनीतिक अधिकारों से वंचित थे और बहुतेरे स्थानों में वे उससे जानबूझकर वंचित रखे गए। जमींदारी-शासन में एक किसान की हैसियत मजदूर से भी गयी-बीती थी। बेगार, नजराने और अपमान का वह सदा शिकार रहा। उधर मजदूर अपने शरीर के सर्वस्व-परिश्रम को थोड़ी सी कौड़ियों पर बेच देता था। पूँजीवालों के हाथों में मजदूर-दुनिया गुलामी का पट्टा लिखाए हुए बैठी थी। सोलहवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के कारण गुलामी की जंजीरें और कस गईं। कल-कारखानों की संख्या बढ़ी, हाथ उद्योग-धंधों का एकदम नाश हो गया और इस प्रकार छह वर्ष के बच्चे से लेकर जवान तथा बूढ़े मजदूरों और यहाँ तक कि उनकी स्त्रियों ने भी सिर्फ रोटियों के लिए अपनी स्वाधीनता को बेच दिया। पूँजीवाले मालामाल हो रहे थे गरीब मजदूर के घोर परिश्रम से लाभ उठा कर। बच्चों से दिन और रात में चौदह-चौदह और पन्द्रह-पन्द्रह घण्टों तक काम लिया जाता था। कारखानेवाले मजदूरों के शरीर का खून चूसकर उन्हें बाहर फेंक देते थे। संगठन था नहीं, और निठल्ले लोगों की यथेष्ट संख्या विद्यमान रहती थी, इसीलिए मजदूरों को मजबूरन सब प्रकार के अत्याचार सहने पड़े। फलतः सम्पत्ति बढ़ते हुए भी गरीबी का भयंकर फैलाव आरम्भ हुआ, और सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ तक वह असह्य हो उठा। एक ओर धन कुबेरों की संख्या हजारों तक पहुँच गयी, परन्तु दूसरी ओर घोर दरिद्रता भोगने वाले करोड़ों थे। मखमली गद्दों और ऊँची अट्टालिकाओं की बगल में दीपक-शून्य ठण्डे और तंग झोपड़े थे जो मनुष्यों के ढाँचों की मौसम की कठिन थपेड़ों से जैसे-तैसे कुछ रक्षा करते थे। यूरोप इस भीषणता का केन्द्र था। इसलिए वहीं इस विषमता का विरोध आरम्भ हुआ, वहीं से मजदूरों का आन्दोलन आरम्भ हुआ। मजदूरों की दलबन्दी आरम्भ हुई। सरकारें पूँजीवालों के हाथों की कठपुतली थीं ही, मजदूरों के आन्दोलन को रोकने के लिए न्याय और अन्याय की परवाह न करके कड़े से कड़े कानून बनाए गए। पर मजदूरों की किलेबन्दी को पूँजीवाले न तोड़ सके। गरीबी के कारण साम्यवाद का जन्म हुआ था और जनता में ये भाव दृढ़ता से जड़ पकड़ने लगे कि परिश्रम करने वालों का भूखे मरना तथा आलसी लोगों का गुलछर्रे उड़ाते फिरना अमानुषिक-अप्राकृतिक है। बढ़ते-बढ़ते सारे यूरोप में मजदूरों की रक्षक-सभाएँ स्थापित हो गईं, और पार्लियामेण्टों तथा व्यवस्थापक सभाओं में उनका प्रतिनिधित्व भी बढ़ने लगा। 1911 में, इंग्लैण्ड की पार्लियामेण्ट में 40 मजदूर प्रतिनिधि थे, अब सम्भवतः 77 प्रतिनिधि हैं। जर्मनी में 110 थे, अब और बढ़े हैं। इसी प्रकार फ्रांस में 76, आस्ट्रिया में 82 और इटली में 45 तथा फिनलैण्ड में 86 मजदूर प्रतिनिधि थे। युद्ध के समय इनकी संख्या बहुत कुछ बढ़ गयी थी। जनता के राजनीतिक अधिकारों के इस प्रकार बढ़ने से पूँजीवालों को कुछ दबना पड़ा है। धीरे-धीरे काम करने के घण्टों में कमी और वेतन में वृद्धि हुई। बच्चों से मेहनत लेना बन्द हो गया। लेकिन यह सफलता सोलहवीं शताब्दी के समय की माँगों के सम्बन्ध में हुई थी, नयी स्थितियों ने इस ओर जो उन्नति की थी, उसकी दृष्टि से मजदूर-दल का असन्तोष बढ़ता ही गया। मिलों में होने वाले बहुत बड़े मुनाफे को पूँजी लगा कर निकम्मे बन कर पड़े रहने वाले लोग मार ले जाते हैं और घोर परिश्रम करने पर भी मजदूर अच्छी तरह भर-पेट भोजन नहीं पाते, इस अवस्था ने आन्दोलन को फिर उठाया। सरकारों की बागडोर पूँजीवालों के ही हाथों में रहने के कारण अब मजदूरों ने देश की खानों, रेलों, जहाजों, मिलों और ट्राम तथा टेलीफोनों पर भी जनता के अधिकारों के माने जाने का दावा पेश कर दिया है। वे जन-सत्तात्मक राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना के लिए बल लगा रहे हैं। उन्हें बहुत कुछ सफलता मिली है। रूस की क्रान्ति तथा बोल्शेविज्म, अर्थात गरीबों के राज्य की स्थापना ने मजदूर-दुनिया को आशातीत बल और साहस पहुँचाया है। इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, आस्ट्रिया, कनाडा, अमेरिका आदि देशों के मजदूर रूसी सिद्धान्तों की सफलता के प्रति सहानुभूति रखने लगे हैं। इतर देशों की दृष्टि से बोल्शेविज्म भले ही बुरा हो, पर मजदूर लोग अपनी गरीबी दूर करने का एकमात्र उपाय यही सोच रहे हैं कि भूमि, खाने, रेल, जहाज आदि राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दी जाये। इससे करों और टैक्सों में कमी होगी, मजदूरों को भी मुनाफे में भाग मिलेगा, और शेष धन राष्ट्रीय सरकारों के हाथों में चला जायेगा। यह एक सिद्धान्त भी बड़ी दृढ़ता के साथ काम कर रहा है कि बहुत अधिक पूँजी किसी के पास रखी रहने ही न दी जाये, क्योंकि इससे गरीबी तथा अत्याचार का जन्म होता है, और व्यक्तियों के हाथों से पूँजी निकाल कर उसे राष्ट्रीय सरकारों के हाथों में सौंपा जाये तथा उसका मुनाफा अंशतः मजदूरों में बाँट दिया जाया करे। अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मजदूरों ने अपने-अपने देशों में हजारों मजदूर समितियाँ बड़े अच्छे संगठन पर बना डाली हैं। इस समय यूरोप भर में—जहाँ-जहाँ मिल, कारखाने आदि हैं—समवायवाद का जोर बढ़ रहा है। इसका मतलब हड़तालों द्वारा अपनी इष्ट-सिद्धि अर्थात अन्यायों को दूर करना है। अब यह समवायवाद इतने जोरों पर बढ़ रहा है, कि इसके भविष्य को देखते हुए कहना पड़ता है कि यह शीघ्र ही अकेले यूरोप में ही नहीं, परन्तु सारे संसार में मजदूर-महाक्रान्ति को जन्म देगा। फ्रांस में रेलों और कल-कारखानों के राष्ट्रीयकरण के लिए कई लाख मजदूर हड़ताल मचाए हुए हैं। इंग्लैण्ड में, खानों, रेलों, और मिलों के राष्ट्रीयकरण का झगड़ा अभी तक बड़ी कटुता के साथ चल रहा है। इटली, जर्मनी, आस्ट्रिया और अमेरिका तथा कनाडा में भी मजदूरों के घोर असन्तोष के कारण हड़तालें हो रही हैं। प्रत्येक देश में बोल्शेविज़्म के रोकने का प्रबन्ध किया जा रहा है और सम्भवतः इसीलिए रूस में भी एडमिरल कोलचक तथा जनरल डेनकिन बोल्शेविक सरकार से भिड़ाए गए हैं। इधर मजदूर लोग यूरोपीय समवायवाद को आगे बढ़ाने के लिए जोर लगा रहे हैं। प्रबन्ध ऐसा हो रहा है कि यूरोप-भर के देशों में, सम्पत्तियों के राष्ट्रीयकरण के लिए एक साथ हड़तालें जारी कर दी जायें! यह बड़ी भयानक बात है। खासकर ऐसे समय में जबकि संसार-भर के ऊपर युद्ध के लाल बादल घुमड़ते फिर रहे हैं। ऐसे समय में यदि मजदूरों का यह घोर आन्दोलन आरम्भ हो गया तो न जाने कितने देशों की सरकारें उलट जायेंगी और न जाने कितने साम्राज्यों के अंग-भंग हो जायेंगे। मजदूरों की यह क्रान्ति दिन-ब-दिन निकट-सी आती जाती है। संसार-भर की सरकारें बड़ी सतर्कता के साथ उसकी ओर टकटकी लगाये हुए हैं, और साथ ही उससे अपनी रक्षा के उपाय कर रही हैं। देखना है कि इस महाक्रान्ति का आगामी रूप कैसा होता है? गरीबों का उद्धार और स्वाधीनता तथा न्याय का प्रचार होता है या नहीं?

(21 जुलाई, 1919 को साप्ताहिक 'प्रताप' में प्रकाशित)

भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष की शुरुआत के अवसर पर विभिन्न कार्यक्रम

एक नये क्रान्ति का संदेश लेकर मेहनतकशों के बीच जाना होगा और उन्हें क्रान्तिकारी जनसंगठनों में संगठित करते हुए एक व्यापक और लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी। इस वक्तव्य के बाद बड़ी संख्या में मौजूद छात्रों-युवाओं के बीच से बहुत से सवाल आये जिनमें ज्यादातर इस बारे में थे कि भगतसिंह के सपनों का भारत कैसा होगा और उनकी राह पर आगे बढ़ने का आज अर्थ क्या है।

गोष्ठी के अध्यक्ष-मण्डल में सुप्रसिद्ध कवयित्री तथा सामाजिक कार्यकर्ता कात्यायनी और वरिष्ठ कथाकार मदनमोहन शामिल थे। कात्यायनी ने आज के समय की चर्चा करते हुए कहा कि आज देशी-विदेशी पूँजी का गठबन्धन मिलकर जनता को लूट रहा है। भगतसिंह के समय के साम्राज्यवाद और आज के साम्राज्यवाद के फर्क की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि लुटेरों के तौर-तरीकों में बदलाव आये हैं और भूमण्डलीकरण के दौर में जनता को लूटने, बाँटने और भ्रमित करने के नये-नये तरीके ईजाद किये जा रहे हैं। क्रान्तिकारी शक्तियों को भी अपनी विरासत और जनता की सृजनात्मकता से सीखते हुए लड़ाई के नये हथियार गढ़ने होंगे। उन्होंने कहा कि इतिहास के रथ को आगे ले जाने की जिम्मेदारी आज फिर नौजवानों के कंधों पर है। नौजवान इस जिम्मेदारी से मुँह नहीं चुरा सकते।

भगतसिंह के सौवें जन्मदिवस पर संकल्प मार्च

गोरखपुर। 28 सितम्बर को भगतसिंह के सौवें जन्मदिवस के मौके पर बिस्मिल तिराहे से दिशा और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने संकल्प-मार्च निकाला जो कचहरी चौक, गोलघर, विजय चौराहा, बैंक रोड होते हुए भगतसिंह चौक, बेतियाहाता पहुँचकर संकल्प सभा में बदल गया।

इसके बाद नौजवान कार्यकर्ताओं ने मशालें हाथ में लेकर भगतसिंह और तमाम शहीदों के सपनों का भारत बनाने के लिए लड़ने का संकल्प लिया।

सभा एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम

30 सितम्बर की शाम को मर्यादपुर बाजार में स्मृति संकल्प यात्रा के तहत नौजवान भारत सभा और देहाती मजदूर यूनियन की ओर से सभा की गयी। सभा को 'बिगुल' के सम्पादक डॉ. दूधनाथ, अरविंद सिंह, मीनाक्षी और अरुण यादव ने सम्बोधित किया।

शहादत थी हमारी इसलिए
कि आज़ादी का
बढ़ता हुआ सफ़ीना
रुके न एक पल को
मगर ये क्या!
ये अँधेरा!
ये कारवाँ रुका क्यों है?
बढ़े चलो कि अभी
काफिला-ए-इंक़लाब को
आगे, बहुत आगे जाना है!

इस मौके पर देहाती मजदूर किसान यूनियन की सांस्कृतिक टोली ने क्रान्तिकारी लोकगीत प्रस्तुत किये और नौजवान भारत सभा की टोली ने शिक्षा व्यवस्था तथा बेरोजगारी पर नुक्कड़ नाटक 'राजा का बाजा' का मंचन किया।

1 अक्टूबर को मऊ जिले के कटघरा मोड़ चौराहे पर सभा तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम किया गया। देहाती मजदूर यूनियन की सांस्कृतिक टोली ने क्रान्तिकारी बिरहा प्रस्तुत किया तथा नौजवान भारत सभा की टोली ने नुक्कड़ नाटक 'लोकतंत्र का फूहड़ नंगा नाच' प्रस्तुत किया।

पंजाब में स्मृति संकल्प यात्रा के तहत विभिन्न कार्यक्रम

नौजवान भारत सभा की ओर से 14 सितम्बर को लुधियाना में भगतसिंह के विचारों और आज के भारत को लेकर विचारगोष्ठी आयोजित की गयी।

17 सितम्बर को नौभास की पखोवाल इकाई की ओर से मशाल जुलूस निकाला गया।

भगतसिंह जन्मशताब्दी वर्ष की शुरुआत के मौके पर नौजवान भारत सभा ने स्कूली छात्रों के लिए लुधियाना में भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया जिसमें करीब 70 विद्यार्थियों ने हिस्सेदारी की। छात्रों को जो विषय दिये गये थे उनमें से कुछ इस प्रकार थे : भगतसिंह का सपना और आज का भारत, भगतसिंह और फिल्में, भगतसिंह और पोस्टर, भगतसिंह और नौजवान आदि। इस कार्यक्रम की तैयारी के सिलसिले में नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने तमाम स्कूलों में जा-जाकर विद्यार्थियों से भगतसिंह और उनके सपनों के बारे में चर्चा की थी जिसका असर विद्यार्थियों के वक्तव्यों में साफ दिखायी दे रहा था।

इन कार्यक्रमों के अलावा नौजवान भारत सभा की ओर से पंजाब के विभिन्न स्थानों पर लगातार सभाएँ, घर-घर जाकर सम्पर्क और क्रान्तिकारी पर्चों तथा साहित्य का वितरण जारी है।

'माँ' उपन्यास के प्रकाशन के 100 वर्ष पूरे होने पर

'माँ'

मक्सिम गोर्की

मक्सिम गोर्की का विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'माँ' पहली बार 1906 में प्रकाशित हुआ था। दुनियाभर में करोड़ों मजदूरों और क्रान्तिकारियों को प्रेरित करने वाले इस उपन्यास का कथानक सच्ची घटनाओं पर आधारित है : 1902 में सोर्मोवो के मज़दूरों का मई दिवस प्रदर्शन, सोर्मोवो पार्टी संगठन की गतिविधियाँ और प्रदर्शन को भंग किये जाने के बाद इसके सदस्यों पर चलने वाला मुक़दमा। गोर्की ने ख़ुद इस बारे में लिखा है : "मज़दूरों के बारे में एक पुस्तक लिखने का विचार मेरे दिमाग़ में नीज़्नी नोवगोरोद में सोर्मोवो प्रदर्शन के बाद आया। मैंने तत्काल सामग्री एकत्र करना और नोट्स बनाना शुरू कर दिया।"

'माँ' उपन्यास ने इस बात की पुष्टि की कि मज़दूर वर्ग ही इंसानियत के बेहतर भविष्य के लिए संघर्ष का नेता है। यह पुस्तक उस मज़दूर वर्ग के बारे में है जो अपने उच्च आदर्शों को साकार करने में संलग्न है। यह पुस्तक मज़दूर वर्ग के लिए है जो उसे अपनी महत्ता को पहचानने में, और साथ ही अपनी राजनीतिक और विचारधारात्मक अपरिपक्वता को भी देख पाने में सक्षम बनाती है। यह पुस्तक जब लिखी गई थी, उसी समय रूसी मज़दूर वर्ग और समूची जनता के लिए अनिवार्य महत्त्व की पुस्तक बन गई थी। रूसी क्रन्ति के नेता लेनिन ने 1907 में 'माँ' के बारे में कहा था : "यह पुस्तक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। जो बहुतेरे मज़दूर क्रान्तिकारी आन्दोलन में महज़ आवेग के वशीभूत होकर, कारण की समुचित समझ के बिना ही, शामिल हो गये हैं, वे 'माँ' को पढ़ने के बाद इसे समझना शुरू कर देंगे।"

उपन्यास की नायिका एक सामान्य मज़दूर स्त्री है जिसने पुस्तक को ''माँ'' का नाम दिया है। उपन्यास के प्रारम्भ में निलोवना किसी भी तरह से उन सैकड़ों दूसरी मज़दूर 'माँ'ओं से अलग नहीं है जो मिलों–कारख़ानों में अपनी ताक़त से अधिक खटती हैं और फिर घरों में पीटी जाती हैं और पियक्कड़ उपद्रवियों द्वारा सताई जाती हैं। लेकिन जब उसका बेटा पावेल अपनी मज़दूर बस्ती में स्वीकृत ज़िन्दगी के तौर-तरीक़ों से ख़ुद को अलग कर लेता है और क्रान्तिकारी बन जाता है, तो वह उसके पक्ष में खड़ी होती है और उसके साथ-साथ आगे बढ़ती है। उपन्यास में निरूपित निलोवना का रास्ता उस आम मज़दूर का रास्ता है जो क्रान्ति में शामिल होने आता है। पाठक निलोवना की दुनिया को उसकी आँखों से देखता है और घटनाओं का मूल्यांकन उसके मानदण्डों से करता है। पावेल के कामरेड भी उसे 'माँ' कहकर ही बुलाते हैं। उसी के माध्यम से, माँ के प्रति अपने रुख के माध्यम से, ये क्रान्तिकारी अपने सच्चे भाईचारे को महसूस करते हैं। उसके माध्यम से, सभी मनुष्यों के भाईचारे के बारे में उनमें गहन चेतना पैदा हो जाती है।

'माँ' एक ऐसी पुस्तक है जो मज़दूर वर्ग के बारे में है, मानव-सम्बन्धों को बदलने में मज़दूर वर्ग की भूमिका के बारे में है। इसका मतलब यह है कि यह पुस्तक सिर्फ़ मज़दूर वर्ग के लिए ही नहीं है, बल्कि पूरी दुनिया की समूची जनता के लिए है। इस कालजयी उपन्यास के प्रकाशन के सौ वर्ष पूरे होने के मोके पर हम इसका एक अंश 'बिगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें उम्मीद है कि यह अंश पाठकों में पूरे उपन्यास को पढ़ने की प्यास जगाएगा। यह उपन्यास आज भी पूरी दुनिया के और खासकर भारत जैसे देशों के मजदूरों के लिए उतना ही जरूरी और अपना है जितना 100 साल पहले रूस के मजदूरों के लिए था। –सं.

बाहर निकलकर जब उसने वातावरण में उत्तेजना और उत्सुकता से भरी हुई आवाज़ों की गूँज सुनी और जब उसने लोगों को झुण्ड बाँधकर अपने घरों के फाटकों और खिड़कियों से उसके बेटे और अन्द्रेई को कौतूहल-भरी दृष्टि से देखता हुआ पाया, तो उसकी आँखों के सामने हरे और भूरे रंग की आकृतियों का एक धुँधला-सा चित्र घूम गया।

लोगों ने उसके बेटे और अन्द्रेई को सलाम किया; आज उनके शब्दों में एक विशेष महत्त्व था। लोग मन्द स्वर में जो टीका-टिप्पणी कर रहे थे उसके केवल कुछ ही अंश उसके कानों में पड़ रहे थे :

"वह देखो, यही दोनों नेता हैं..."

"हमें क्या मालूम कि नेता कौन है..."

"मैं किसी को नुकसान पहुँचाने के लिए नहीं कह रहा हूँ!"

किसी ने अपने घर के बाहर वाले आँगन से झुँझलाकर चिल्लाते हुए कहा :

"पुलिस पकड़ ले जायेगी, उनका नामो-निशान तक नहीं रह जायेगा!"

"एक बार तो पकड़ ले गयी थी!"

ऊपर खिड़की में से कोई स्त्री चिल्लायी :

"सोच-समझकर क़दम उठाना! याद रखना, तुम्हें अपने परिवार का पेट पालना है!"

वे लँगड़े जोसीमोव के घर के सामने से गुज़रे। फ़ैक्टरी में काम करते समय उसकी टाँगें कट गयी थीं और उसे फ़ैक्टरी से पेंशन मिलती थी।

"पावेल!" उसने खिड़की में से सिर निकालकर पुकारा। "बदमाश, अब की बार तेरी गर्दन तोड़ दी जायेगी! तुझे अपने किये की सजा मिल जायेगी!"

माँ काँप गयी और ठिठककर खड़ी हो गयी। उसके अंग-अंग में क्रोध की लहर दौड़ गयी। नज़रें ऊपर उठाकर माँ ने उस लँगड़े के चेहरे को देखा जिस पर खा-खाकर चर्बी छा गयी थी और लँगड़े ने एक गाली देकर अपना सिर अन्दर कर लिया। माँ ने अपने क़दम तेज़ किये और अपने बेटे के पास पहुँचकर बिल्कुल उसके पीछे-पीछे चलने लगी, इस भय से कि कहीं पिछड़ न जाये।

ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे पावेल और अन्द्रेई किसी बात की ओर ध्यान ही न दे रहे हों और उनके गुजरते समय लोग जो बातें कहते थे उनका उन्हें कोई ज्ञान ही न हो। वे बड़े शान्त भाव से चले जा रहे थे, उन्हें कोई जल्दी नहीं थी। रास्ते में एक बार मिरोनोव ने उन्हें रोका; वह अधेड़ उम्र का बहुत विनम्र आदमी था और उसके गम्भीर स्वभाव और ईमानदारी के कारण सब लोग उसकी इज्जत करते थे।

"क्यों दनीलो इवानोविच, तो तुम भी आज काम पर नहीं गये?" पावेल ने कहा।

"मेरे घर बच्चा होने वाला है। और फिर ऐसे दिन किसे चैन पड़ता है!" वह साथियों को लगातार घूरता रहा और उसने दबी आवाज़ में पूछा :

"सुना है कि तुम लोग आज डायरेक्टर को बड़ी मुसीबत में फँसाने का इरादा कर रहे हो–कुछ खिड़कियाँ-विड़कियाँ तोड़ने की बात है, क्यों?"

"हम कोई पिये हुए हैं क्या?" पावेल ने कहा।

"हम तो बस झण्डे लेकर सड़क पर जुलूस निकालेंगे और कुछ गीत गायेंगे," उक्रइनी ने कहा। "हमारे गाने सुनना, उनमें हमारी सारी बातें कह दी गयी हैं!"

"मैं जानता हूँ कि तुम लोग किन बातों के लिए लड़ रहे हो," मिरोनोव ने विचारमग्न होकर कहा। "मैं तुम्हारे अख़बार पढ़ता हूँ। अच्छा, पेलागेया निलोवना!" उसने विस्मित होकर कहा; माँ को देखकर उसकी चतुराई-भरी आँखों में चमक आ गयी। "तुम भी बग़ावत में शामिल हो गयीं?"

"मरने से पहले एक बार तो न्याय का साथ दे लूँ!"

"ठीक है, ठीक है!" मिरोनोव ने कहा। "मालूम होता है कि वे ठीक ही कहते थे कि तुम ही फ़ैक्टरी में वह ग़ैरक़ानूनी पर्चे लाती थीं।"

"किसने कहा यह?" पावेल ने पूछा।

"हुँ:, सुना है मैंने! अच्छा मैं चलता हूँ। सँभलकर चलना, अपने को क़ाबू में रखना!"

माँ चुपके-चुपके मुस्करा दी। वह ख़ुश थी कि लोग उसके बारे में ऐसी बात कहते थे।

"माँ, तुम भी जेल भेज दी जाओगी!" पावेल ने हँसकर कहा।

सूरज चढ़ता जा रहा था और वसन्त ऋतु के उस सुखद दिन की ताज़गी में अपनी रश्मियाँ उँडेल रहा था। बादलों की गति मन्द पड़ गयी और उनकी परछाईं हल्की हो गयी; अब सूरज की किरणें उनमें से छन-छनकर आ रही थीं। बादल मन्द गति से सड़क और घरों की छतों पर मँडराते हुए लोगों को छाया प्रदान कर रहे थे; उनकी परछाइयाँ मानो बस्ती को बुहार रही थीं, घरों पर से धूल और लोगों के चेहरों पर से उकताहट सब पोंछे दे रही थीं। हर चीज़ में एक नयी पुलक थी। स्वरों का गुंजन तेज़ होता गया और धीरे-धीरे मशीनों की गड़गड़ाहट इस आवाज़ में डूबकर रह गयी।

एक बार फिर खिड़कियों और आँगनों से शब्द वायु की लहरों पर उड़ते और रेंगते हुए माँ के कानों तक पहुँचे–इन शब्दों में द्वेष और आतंक, शंका और उल्लास सभी कुछ तो था। परन्तु अब उसमें कुछ बातों का खण्डन करने, कुछ बातों को समझाने, अपनी कृतज्ञता प्रकट करने और उस दिन के विचित्र वैविध्यपूर्ण जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने की एक उमंग पैदा हो गयी थी।

एक संकरी-सी गली में लगभग सौ लोगों की भीड़ जमा हो गयी थी और उनके बीच से वेसोवश्चिकोव की आवाज़ आ रही थी।

"वे गन्ने के रस की तरह हमारा ख़ून निचोड़ लेते हैं!" उसके ये भोंड़े शब्द लोगों के सिरों पर हथौड़े की तरह प्रहार कर रहे थे।

"यही तो करते हैं!" एक साथ कई स्वर सुनायी दिये।

"लड़का अपना ज़ोर लगा रहा है!" उक्रइनी ने कहा। "मैं जाकर उसकी मदद करता हूँ!..."

जब तक पावेल उसे रोके रहा वह अपने दुबले-पतले और लचकीले शरीर से भीड़ को चीरता हुआ आगे पहुँच गया जैसे पेंच कार्क को चीरता चला जाता है।

"साथियो!" उसने अपनी सुरीली आवाज़ में चिल्लाकर कहा। "लोग कहते हैं कि इस पृथ्वी पर भाँति-भाँति के लोग रहते हैं–यहूदी और जर्मन, अंग्रेज और तातार। मगर मैं इस बात को नहीं मानता! इस पृथ्वी पर बस दो तरह के लोग रहते हैं, दो ऐसी तरह के लोग जिनका एक-दूसरे से कोई मेल नहीं हो सकता–अमीर और ग़रीब! लोगों का पहनावा अलग होता है, उनकी बोली अलग होती है, मगर जब हम देखते हैं कि फ़्रांसीसी, जर्मन और अंग्रेज पैसे वाले वहाँ के मज़दूरों के साथ कैसा बरताव करते हैं तब हमारी समझ में आता है कि हम मज़दूरों के लिए वे सब बदमाश हैं, उनका सत्यानास हो!"

भीड़ में कोई हँसा।

"और दूसरी तरफ़ अगर हम ग़ौर से देखें तो हमें मालूम होगा कि मज़दूर चाहे फ़्रांसीसी हों या तातार या तुर्क, सब वैसी ही कुत्तों जैसी ज़िन्दगी बसर करते हैं जैसी कि हम रूसी मज़दूर!"

गली में और लोग आते गये; वे पंजों के बल खड़े होकर अपनी गर्दनें तानकर देखते, पर बोलते कुछ भी नहीं।

अन्द्रेई का स्वर ऊँचा होता गया।

"दूसरे देशों के मज़दूरों ने इस सीधी-सी बात को समझ लिया है और आज, मई दिवस के दिन..."

"पुलिस!" कोई चिल्लाया।

चार पुलिसवाले घोड़े दौड़ाते हुए सीधे गली में घुसे और अपने चाबुक फटकारते हुए चिल्लाये :

"चलो यहाँ से, क्या भीड़ लगा रखी है!"

लोगों ने नाक-भौं सिकोड़कर उन्हें देखा और अनमने भाव से घोड़ों के लिए रास्ता छोड़ने लगे। कुछ लोग चहारदीवारियों पर चढ़ गये।

"ये अपने को बहुत बहादुर सिपाही समझते हैं मगर हैं बिल्कुल सुअर!" किसी ने निडरता से चिल्लाकर कहा।

उक्रइनी गली के बीच में वहीं खड़ा रहा और दो घोड़े अपनी गर्दनें ताने उसकी तरफ़ झपटे। वह एक तरफ़ को हट गया और उसी क्षण माँ उसका हाथ पकड़कर उसे अपने साथ खींच लायी।

"तुमने कहा था कि तुम पावेल के साथ रहोगे," माँ ने बुड़बुड़ाते हुए कहा, "और यहाँ आते ही अकेले मुसीबत के मुँह में घुस गये!"

"माफ़ कर दो, माँ!" उक्रइनी ने मुस्कराकर कहा।

... ...

सीटी बजी और सारा कोलाहल ध्वनि के इस विकराल प्रवाह में डूब गया। भीड़ सिहर उठी। जो लोग बैठे थे वे उठ खड़े हुए और एक क्षण के लिए हर आदमी शान्त और सतर्क हो गया; कुछ के तो चेहरे भी पीले पड़ गये।

"साथियो!" पावेल का गूँजता हुआ दृढ़ स्वर सुनायी दिया। माँ की आँखों में गर्म आँसू छलक आये और सहसा उसमें मानो नयी शक्ति का संचार हुआ। एक झटके के साथ वह जल्दी से अपने बेटे के पीछे जाकर खड़ी हो गयी। लोग उसके बेटे के चारों ओर इसी तरह खड़े थे जैसे चुम्बक के चारों ओर लोहे के टुकड़े।

माँ ने अपने बेटे के चेहरे की ओर देखा; उसे केवल उसकी गर्व और साहस से भरी चमकती हुई आँखें दिखायी दीं .

"साथियो! हमने फैसला किया है कि आज हम खुले आम यह बता दें कि हम कौन हैं और अपना झण्डा ऊँचा करें, जो न्याय, इन्साफ़ और आज़ादी का झण्डा है!"

एक लम्बा-सा सफ़ेद बाँस हवा में एक क्षण के लिए उठा और फिर नीचे आकर भीड़ को दो हिस्सों में बाँटता हुआ कहीं खो गया; एक क्षण बाद ही मज़दूर वर्ग का झण्डा ऊँचा हुआ और उत्सुकता से ऊपर उठी हुई आँखें एक बड़ी-सी लाल चिड़िया की तरह फहराते हुए उस झण्डे को देखने लगीं।

(पेज 11 पर जारी)

(पेज 10 से आगे)

पावेल ने अपना हाथ उठाया और झण्डा हिलने लगा; दर्जनों हाथों ने लपककर झण्डे के चिकने सफ़ेद बाँस को थाम लिया; उनमें माँ का भी हाथ था।

"मज़दूर वर्ग ज़िन्दाबाद!" पावेल ने नारा लगाया।

सैकड़ों लोगों का कण्ठ-निनाद इसके उत्तर में गूँज उठा।

"सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी ज़िन्दाबाद! साथियो, यह हमारी पार्टी है, हमारे विचार इसी की देन हैं!"

जन-समुदाय उमड़ा पड़ रहा था। जो लोग इस झण्डे के महत्त्व को समझते थे वे आगे बढ़कर उसके निकट पहुँचने का प्रयत्न कर रहे थे; माज़िन, समोइलोव और दोनों गूसेव-बन्धु पावेल के पास पहुँच गये। निकोलाई सिर झुकाये भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था; माँ को ऐसा लगा कि कुछ दूसरे नौजवान, जिनकी आँखों में चमक थी, जिन्हें वह पहचानती भी नहीं थी, उसे एक तरफ़ को ठेले दे रहे थे...

"दुनिया के मज़दूर ज़िन्दाबाद!" पावेल ने फिर नारा लगाया। हज़ारों कण्ठों ने एक साथ आत्मा को आन्दोलित कर देने वाले जय-घोष से इसका उत्तर दिया जो उनके उल्लास और उनकी शक्ति के बढ़ते हुए तूफ़ान का परिचायक था।

माँ ने निकोलाई और एक किसी दूसरे आदमी का हाथ पकड़ लिया; आँसुओं से उसका गला रुँधा हुआ था, पर वह रोयी नहीं। उसके पाँव काँप रहे थे और उसने काँपते होंठों से बुदबुदाकर कहा:

"मेरे बच्चे..."

... ...

भीड़ बढ़ती गयी। पावेल ने झण्डा उठा लिया और जब वह उसे लेकर आगे बढ़ा तो झण्डा लहराने लगा; वह सूर्य के प्रकाश में चमक रहा था और उसकी लहरों में एक मुस्काराहट अँगड़ाइयाँ ले रही थी...

फ़्योदोर माज़िन ने गाना शुरू किया :

"ये सौ बरस के बन्धन..."

दर्जनों और स्वरों का मन्द प्रबल प्रवाह उस स्वर में मिल गया :

"हम आज करेंगे भंग!..."

माँ माज़िन के पीछे चल रही थी; उसके होंठों पर एक हर्ष-भरी मुस्कराहट खेल रही थी, फ़्योदोर के सिर के ऊपर से वह झण्डे और अपने बेटे को देख सकने के लिए आँखों पर ज़ोर दे रही थी। उसके चारों ओर हर्ष-भरे चेहरे और हर रंग की आँखें थीं और उसका बेटा और अन्द्रेई उसके आगे-आगे चल रहे थे। वह उन दोनों के गाने की आवाज़ सुन रही थी, अन्द्रेई की सुरीली आवाज़ पावेल की भारी आवाज़ में मिलकर एक हो गयी थी :

"उठ जाग, ओ भूखे बन्दी,
अब खींचो लाल तलवार!..."

लोग भाग-भागकर झण्डे की तरफ़ आ रहे थे। भागते हुए वे चिल्लाते जा रहे थे पर उनके चिल्लाने की आवाज़ गीत की आवाज़ में डूबी जा रही थी—उसी गाने की आवाज़ में जिसे घर पर दूसरे गानों की अपेक्षा धीमे स्वर में गाया जाता था। यहाँ सड़क पर वह गीत बिना किसी रोकटोक के गूँज रहा था और उसमें बहुत ज़ोर पैदा हो गया था। उस गीत में अदम्य साहस की गूँज थी और जहाँ उसमें लोगों का भविष्य की ओर जाने वाले लम्बे मार्ग को अपनाने का आवाहन किया गया था वहाँ यह भी स्पष्ट रूप से कह दिया था कि वह मार्ग कितना कठिन होगा। उसकी अखण्ड ज्योति ने हर उस चीज़ के अन्धकार को निगल लिया था जो अपना महत्त्व खो चुकी थी, परम्परागत भावनाओं के सारे कचरे को साफ़ कर दिया था और नूतन के प्रति जो भय था उसे इस ज्योति ने जलाकर राख कर दिया था।

... ...

"उठ जाग, ओ भूखे बन्दी!..."

ऐसा मालूम होता था कि पीतल के एक बड़े-से भोंपू में से गीत निकलकर हवा में गूँज रहा है, लोगों में जागृति पैदा कर रहा है; कुछ लोगों को लड़ने के लिए तत्पर कर रहा है और कुछ दूसरे लोगों में एक तीव्र उत्सुकता, किसी नये सुख की एक अस्पष्ट सी भावना उत्पन्न कर रहा है; कहीं उसने क्षीण आशाएँ जागृत कीं तो कहीं बरसों से घुटते हुए क्रोध की ज्वाला भड़का दी। सब की आँखें उसी ओर देख रही थीं जहाँ आगे लाल झण्डा हवा में लहरा रहा था।

"देखो वे आ रहे हैं!" किसी ने आवेश में गरजकर कहा। "शाबाश, नौजवानो!"

और चूँकि उस व्यक्ति के हृदय में कोई इतनी तीव्र भावना भरी हुई थी जिसे वह शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता था इसलिए उसने एक मोटी-सी गाली दी। परन्तु दास-प्रवृत्ति वाली कुत्सा, अन्धी और मनहूस कुत्सा भी उस साँप की फुफकार की भाँति सुनायी दे रही थी जो सूर्य के प्रकाश से भाग रहा हो।

"नास्तिक कहीं के!" एक आदमी ने खिड़की से अपना मुक्का तानकर दिखाते हुए चीखकर कहा।

"महाराजाधिराज के ख़िलाफ़ बग़ावत, सम्राट के ख़िलाफ़ बग़ावत? विद्रोह?" किसी दूसरे आदमी की तेज़ आवाज़ सुनायी दी।

नर-नारियों के विशाल जन-समुदाय में, जो एक प्रबल प्रवाह की तरह आगे बढ़ रहा था, माँ ने चिन्ताग्रस्त चेहरे देखे। गीत से प्रेरित होकर जन-समुदाय ज्वालामुखी के लावा की तरह आगे बढ़ता जा रहा था; ऐसा प्रतीत होता था कि गीत के प्रवाह में हर चीज़ बही जा रही है, अपने सम्पर्क मात्र की शक्ति से वह मार्ग प्रशस्त करता जा रहा था। माँ ने बहुत दूर आगे लाल झण्डे को देखा और उसकी कल्पना में अपने बेटे की आकृति घूम गयी—काँसे का ढला हुआ-सा उसका ललाट और दृढ़ विश्वास की ज्योति से चमकती हुई उसकी आँखें।

माँ जुलूस में सबसे पीछे रह गयी थी; वह अब ऐसे लोगों के बीच में थी जो बड़े निश्चिन्त भाव से चल रहे थे और चारों ओर इस बेपरवाही से देख रहे थे मानो वे कोई ऐसा नाटक देख रहे हों जिसका अन्त उन्हें पहले से ही मालूम हो। वे आवेशरहित स्वर में, पर दृढ़ विश्वास के साथ बातें कर रहे थे :

"एक टुकड़ी स्कूल में तैनात है और दूसरी फ़ैक्टरी में..."

"गवर्नर साहब आ गये हैं..."

"सच?"

"मैंने अपनी आँखों से देखा है—अभी तो आये हैं!"

"तो हम लोगों से डर गये!" सन्तोष की साँस लेते हुए उसने एक गाली दी। "ज़रा सोचो—इतना फ़ौज-फाटा और गवर्नर साहब

ख़ुद!"

"ओह, मेरे लाड़लो!" माँ सोच रही थी।

परन्तु यहाँ जो शब्द वह सुन रही थी वे उसे उत्साहरहित और निष्प्राण प्रतीत हुए। उसने इन लोगों से आगे निकल जाने के लिए अपने क़दम तेज़ किये; उनसे आगे निकल जाना कोई मुश्किल नहीं था क्योंकि वे बहुत धीरे-धीरे शिथिल चाल से चल रहे थे।

सहसा ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे जुलूस का अगला भाग किसी चीज़ से टकराया और एक भयभीत गर्जन के साथ पूरा जन-समुदाय पीछे हटने लगा। गीत भी एक बार काँप गया, परन्तु फिर वह पहले से भी ऊँचे स्वर में और तेज़ लय के साथ गूँज उठा। थोड़ी देर बाद गीत मन्द पड़ने लगा। एक-एक करके लोग गाना बन्द करते जा रहे थे। अलग-अलग कुछ आवाज़ें सुनायी दे रही थीं जो गीत को फिर पहले जैसा गौरव प्रदान करने का प्रयत्न कर रही थीं :

"उठ जाग, ओ भूखे बन्दी,
अब खींचो लाल तलवार!..."

परन्तु अब इस प्रयास में सब का बल, सब की एकबद्ध आस्था शामिल नहीं थी। अब उनके स्वरों में आतंक की प्रतिध्वनि थी।

चूँकि माँ को जुलूस का अगला हिस्सा नहीं दिखायी दे रहा था और उसे मालूम नहीं था कि क्या हुआ था, इसलिए वह भीड़ को चीरती हुई आगे बढ़ने लगी। आगे बढ़ते हुए वह पीछे हटने वालों से बार-बार टकरा जाती थी; कुछ लोगों की त्योरियों पर बल थे, कुछ सिर झुकाये हुए थे, कुछ अन्य लोग खिसियायी हुई हँसी हँस रहे थे और कुछ ऐसे भी थे जो व्यंग्यपूर्वक सीटी बजा रहे थे। माँ ने उनके चेहरों को ध्यान से देखा; उसकी आँखों में जिज्ञासा, निवेदन, विनय सभी कुछ ही था...

"साथियो!" पावेल का स्वर सुनायी दिया। "सिपाही भी हमारे जैसे ही लोग हैं। वे हम पर हाथ नहीं उठायेंगे। और वे उठायें भी क्यों? बस इसलिए कि हम ऐसे सत्य की बात करते हैं जिसे हर आदमी को जानना चाहिये? उन्हें भी इस सत्य की बात को सुनना चाहिये। वे अभी इस बात को नहीं समझते पर जल्द ही वह समय आयेगा जब वे हत्या और लूट के झण्डे के नीचे हमारा विरोध करने के बजाय आज़ादी के झण्डे के नीचे हमारे कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेंगे। और उनमें इस सत्य की समय-बूझ जल्दी पैदा करने के लिए हमें आगे बढ़ते रहना चाहिये। आगे बढ़ो, साथियो! एक क़दम भी पीछे न हटो!"

पावेल के स्वर में दृढ़ता थी। उसके शब्दों में उत्साह की गूँज थी और उसका स्वर स्पष्ट था, फिर भी भीड़ तितर-बितर हो रही थी, एक-एक करके लोग जुलूस से बाहर निकलकर या तो घरों में घुस रहे थे या चहारदीवारियों का सहारा लेकर खड़े होते जा रहे थे। जुलूस अब आगे से पतला और पीछे चौड़ा हो गया था; सबसे आगे पावेल था जिसके सिर के ऊपर मज़दूरों का लाल झण्डा लहरा रहा था। या शायद यह कहना अधिक उचित होगा कि जुलूस उड़ने को तैयार पंख फैलाये हुए एक काले पक्षी के समान था और पावेल उसके शीर्षस्थान पर था...

... ...

सड़क के सिरे पर माँ ने बिल्कुल एक जैसे लगने वाले व्यक्तियों की भूरी-सी दीवार खड़ी देखी। उन्होंने चौक में प्रवेश करने का मार्ग रोक रखा था। हर आदमी के कन्धे पर संगीन की क्रूर चमक थी। उस निःशब्द, निश्चल दीवार की ओर से एक सर्द झोंका आया और मज़दूरों पर छा गया, माँ का हृदय काँप उठा।

... ...

"साथियो!" पावेल कह रहा था। "मरते दम तक हमें आगे बढ़ते रहना है। हमारे लिए और कोई रास्ता नहीं है!"

लोग शान्त हो गये और उनकी उत्सुकता बढ़ गयी। झण्डा ऊँचा उठकर एक क्षण को डगमगाया और फिर लोगों के सिरों पर से होता हुआ धीरे-धीरे सिपाहियों की उस भूरी दीवार की तरफ़ बढ़ा। माँ काँप उठी और उसने एक आह भरकर अपनी आँखें बन्द कर लीं : चार आदमी—पावेल, अन्द्रेई, समोइलोव और माज़िन—बाक़ी भीड़ से आगे बढ़ गये थे।

फ़्योदोर माज़िन का स्पष्ट स्वर हवा की लहरों पर गूँज उठा :

"बलिदान तुम्हारा उच्च महान..."

और मन्द स्वर में एक गहरी आह की तरह गीत की दूसरी पंक्ति सुनायी दी।

"युद्ध अनोखा... दे दी जान..."

फ़्योदोर की आवाज़ एक ज्योतिर्मय पथ प्रशस्त करती हुई गूँज रही थी; उसके स्वर में विश्वास था और इसी विश्वास की वह घोषणा कर रहा था :

"जो कुछ था सर्वस्व लुटाया..."

उसके साथियों ने दूसरी पंक्ति उसके साथ दुहरायी :

"आज़ादी के लिए चुकाया..."

... ...

"मरण-दिवस हिंसा का होगा..."

फ़्योदोर भविष्य की घोषणा कर रहा था...

"मनुज नींद से जागा होगा!..."

उसके उत्तर में कई दृढ़ स्वरों ने मिलकर चेतावनी दी।

परन्तु गाने के साथ ही लोग भयभीत होकर कुछ कानाफूसी भी कर रहे थे।

"अब हुकुम मिलने ही वाला है..."

और उनका भय ठीक निकला; आगे से एक कर्कश स्वर सुनायी दिया :

"बन्दूकें तान लो!"

फ़ौलाद की संगीनें आगे बढ़ते हुए झण्डे के मुकाबले पर आ गयीं; ऐसा प्रतीत होता था कि संगीनें झण्डे पर तिरस्कार से हँस रही हैं।

"आगे बढ़ो!"

"लो, वे आ रहे हैं!" काने ने अपने हाथ दोनों जेबों में डालते हुए कहा और एक तरफ़ को हट गया।

माँ एकटक देखती रही। सिपाही पूरी सड़क को घेरकर आगे बढ़े; मानो एक भूरी लहर उठी हो; यह लहर क्रूर निश्चय के साथ आगे बढ़ रही थी और उसके शिखर पर संगीनों की रुपहली चमक थी। जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाती हुई माँ अपने बेटे के और निकट जा पहुँची और उसने देखा कि अन्द्रेई अपने लम्बे-चौड़े शरीर की आड़ में पावेल को छुपा लेने के लिए उसके सामने आ गया था।

"कामरेड, अपनी जगह वापस लौट जाओ!" पावेल ने कड़ककर कहा।

अन्द्रेई गर्दन ताने दोनों हाथ पीठ के पीछे किये गा रहा था। पावेल ने उसे कन्धे से ठेलते हुए एक बार फिर चिल्लाकर कहा :

(पेज 2 पर जारी)

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2006-08

भारतीय लोकतंत्र बनाम महँगाई, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी...

भारतीय पूँजीपति हुक्मरान भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहते हैं। वे कहते हैं कि भारत में लोगों का राज्य है। सबसे पहले तो हमें यह तय कर लेना होगा कि लोग (जनता) कौन होते हैं। लोग वे होते हैं जो काम करके, अपनी खुद की मेहनत से अपनी और अपने परिवार की जरूरतों को पूरा करते हैं। दूसरों की मेहनत पर जीने वाले, दूसरों की खून-पसीने की कमाई को हड़पने वाले कभी लोग (जनता) नहीं कहलाते। मुट्ठी भर पूँजीपतियों, धन-पशुओं को लोगों में नहीं गिना जाता। तथ्य इस बात की गवाही देते हैं कि भारतीय राज्य पूँजीपति वर्ग द्वारा शासित राज्य है न कि लोगों द्वारा, यह लोकतंत्र नहीं है क्योंकि लोकतंत्र का अर्थ होता है—लोगों का, लोगों के लिए और लोगों द्वारा राज्य।

आज हर वह भारतीय जो मेहनत करके अपना गुजारा करता है, गरीबी, बेरोजगारी और मँहगाई की मार सह रहा है। आम घरेलू उपयोग की चीजें और खाद्य पदार्थों की कीमतें आसमान छू रही हैं। जनता भूख से तड़प रही है, लेकिन सरकार के लिए महँगाई कोई गम्भीर समस्या नहीं है। उसके लिए यह महज आंकड़ों की बात है जिसका हल भी आंकड़ों को ऊपर-नीचे करके कर दिया जाता है। सरकार कहती है कि अगर खाद्य-पदार्थों की कीमतें बढ़ रही हैं तो तैयार माल (मैन्युफैक्चर्ड गुड्स) की कीमतें घट भी तो रही हैं, इसलिए मँहगाई दर स्थिर है! लेकिन ये तैयार माल हैं ऐशो-आराम के लिए, जिनके बारे में पेट का मसला हल होने के बाद ही सोचा जा सकता है। आज भी देश की 70 प्रतिशत जनता गरीबी की जिन्दगी बसर कर रही है। इस जनता की रोटी, कपड़े, मकान, स्वास्थ्य सुविधाओं और शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रहीं। और ऊपर से जनता महँगाई से कराह रही है। लेकिन सरकार कह रही है कि सन 2002-03 में मूल्य सूचकांक की वृद्धि दर 6.5 थी और अब 10 जून 2006 को जारी आंकड़ों के मुताबिक इससे पिछले 12 महीनों में वृद्धि दर 5.2 है। 2003-04 में मूल्य सूचकांक में 4.6, 2004-05 में 5.1 और 2005-06 में 4.1 की वृद्धि हुई। इस प्रकार सरकार का कहना है कि 2003-04 के मुकाबले मूल्य सूचकांक में वृद्धि दर कम है। इसलिए उसके मुताबिक महँगाई कोई गम्भीर मसला नहीं।

लेकिन अगर आंकड़ों को विस्तार से देखा जाये तो सारा मामला समझ में आ जाता है कि आम आदमी महँगाई से क्यों तंग है। वर्ष 2002-03 में खाद्य पदार्थों (दाल-रोटी आदि) के मूल्य सूचकांक की वृद्धि दर सिर्फ 0.8, 2003-04 में 0.2, 2004-05 में 2.0 और 2005-06 में 4.3 थी। लेकिन 10 जून 2006 को जारी सूचकांक में खाद्य पदार्थों की वृद्धि दर पिछले वर्ष 8.0 दिखाई गई है। दूसरी तरफ उपभोक्ता वस्तुओं में कोई खास वृद्धि नहीं हुई। कुछ चीजों की कीमतें कम हुई हैं। मिसाल के लिए औद्योगिक वस्तुओं के कीमत सूचकांक की दर 2002 में 6.7 थी। लेकिन पिछले वर्ष में यह दर 2.9 थी। इसलिए यह आसानी से देखा जा सकता है कि समूचा मूल्य सूचकांक आम मेहनतकश आदमी के लिए महँगाई का कोई पैमाना नहीं है।

भारत सरकार के योजना आयोग ने गरीबी रेखा तय करने के लिए एक ही पैमाना इस्तेमाल किया है। वह है कि एक मनुष्य को भोजन में कम से कम कितनी ऊर्जा यानी कि कितनी कैलोरियों की जरूरत पड़ती है। योजना आयोग ने तय किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में जो लोग 2400 कैलोरियाँ और शहरी क्षेत्र में रहने वाले जो मनुष्य 2100 कैलोरियाँ प्राप्त कर लेते हैं वे गरीब नहीं हैं। इसका अर्थ है कि ग्रामीण इलाके में 368 रुपये और शहरी क्षेत्र में 557 रुपये अगर कोई व्यक्ति अपने ऊपर प्रति महीना खर्च करता है तो वह गरीबी रेखा से ऊपर है।

आज के समय में ग्रामीण क्षेत्र में औसतन 532 कैलोरियों और शहरी क्षेत्र में 188 कैलोरियों की प्रति व्यक्ति कमी है। लेकिन जनसंख्या का एक हिस्सा ऐसा होता है जो शारीरिक मेहनत नहीं करता इसलिए उन्हें कम कैलोरियों की जरूरत पड़ती है। इन सबों को मिलाकर जब औसत निकाला जाता है तो यह कम हो जाता है। इसलिए ये सही नहीं हो सकता।

अगर शारीरिक मेहनत करने वालों पर ही औसत निकाला जाए तो यह 2700 कैलोरियाँ बनती हैं, जो सरकार के पैमाने से ग्रामीण क्षेत्र में 300 और शहरी क्षेत्र में 600 ज्यादा बनती है। लेकिन इसमें और अतिआवश्यक जरूरतें शामिल नहीं हैं। इसलिए कैलोरियों का पैमाना गरीबी रेखा तय करने का ठीक पैमाना नहीं हो सकता। क्या सिर्फ नब्ज का चलना ही तय कर देता है कि वह मनुष्य गरीब नहीं है।

जिस हिसाब से उत्पादक शक्तियों का विकास हुआ है, विज्ञान ने तरक्की की है उसके मुताबिक ही आज के दौर में रोटी, कपड़ा और मकान के साथ-साथ स्वास्थ्य, शिक्षा, बिजली, परिवहन और मनोरंजन भी जिन्दगी की बुनियादी जरूरतें बन गई हैं।

लेकिन आज 21वीं सदी में भारत के तथाकथित लोकतंत्र की जो तसवीर हमारे सामने है उसके अनुसार देश के 38 प्रतिशत घरों को अपने नजदीक कहीं पीने का साफ पानी भी नहीं मिलता। देश के लगभग आधे यानी कि 49 प्रतिशत लोगों के पास सुरक्षित और स्वास्थ्य अनुकूल घर नहीं है। 70 प्रतिशत लोगों को साफ-सुथरे शौचालयों की सुविधा उपलब्ध नहीं है। 85 प्रतिशत गाँवों में माध्यमिक स्कूल नहीं है। 15 से 19 वर्ष की उम्र के बच्चे स्कूल से बाहर हैं। 43 प्रतिशत गाँवों में सड़क ही नहीं है। इसलिए भारत सरकार द्वारा गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की गिनती जो कि 26 प्रतिशत बतायी जा रही है सरासर झूठ है।

और तो और पर्याप्त भोजन का पैमाना कैलोरियों को तय करना एक बहुत बड़ा धोखा है। मनुष्य के शरीर को ऊर्जा के अलावा और भी तत्वों की जरूरत होती है। इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च ने भारतीय लोगों की खाद्य जरूरतों के बारे में जो दिशा-निर्देश जारी किये हैं उसके मुताबिक "मनुष्य को स्वस्थ और सक्रिय जिन्दगी के लिए बहुत किस्म के खाद्य तत्वों की जरूरत पड़ती है जो उसकी खुराक का हिस्सा होते हैं, शरीर का तापमान स्थिर रखने के लिए ऊर्जा की जरूरत होती है जो शरीर के विकास के लिए जरूरी है। इसके बिना प्रोटीन की जरूरत पड़ती है, लोहा, कैल्शियम, फासफोरस, मैग्नीशियम, सोडियम और पोटेशियम जैसे धातुओं की जरूरत है। भारत में लोहे की कमी की वजह से 45 प्रतिशत मर्द और 70 प्रतिशत औरतें और बच्चे एनीमिया (खून की कमी) के मरीज हैं। इसकी वजह विटामिनों की जरूरत है जो शरीर के लिए कई प्रकार से फायदेमंद होते हैं। यूनीसेफ के मुताबिक पोषण की कमी बीमारियों की मुख्य वजह है। बच्चों की 50 प्रतिशत मौतें पोषण की कमी से होती हैं। असल में, तसवीर का यह एक धुँधला-सा अक्स ही है समूची तसवीर तो इससे कहीं ज्यादा भयानक है।

2005 की कीमतों के आधार पर एक औरत का खुराकी खर्च 19.67 और मर्द का 22.75 रुपये प्रतिदिन बनता है। इस तरह एक औसत व्यक्ति का खुराकी खर्च 573 रुपये प्रति महीना बनता है। एक औसत परिवार के पाँच सदस्यों के लिए यह खर्च 2900 रुपये महीना बनता है। इसमें स्वास्थ्य सुविधाएँ, शिक्षा, मनोरंजन, परिवहन आदि शामिल नहीं हैं।

रोटी के बाद दूसरी बड़ी जरूरत सिर ढकने की है। भारत के ग्रामीण क्षेत्र में 64 प्रतिशत लोगों के पास पक्का घर नहीं है और शहरों के 23 प्रतिशत लोगों के पास पक्का घर नहीं। अगर औसत निकाला जाये तो आधी जनता के पास पक्का घर नहीं है। इसका अर्थ है तथाकथित भारतीय लोकतंत्र का आधा हिस्सा कच्चे मकानों, झुग्गी-झोपड़ियों में रह रहा है। फुटपाथों, स्टेशनों, बस अड्डों, पुलों के नीचे सोने वालों की गिनती इससे अलग है। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्र में 89 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र में 37 प्रतिशत लोगों के पास शौचालय की सुविधा नहीं है। यानी कि 70 प्रतिशत जनता इस बुनियादी जरूरत से भी वंचित है।

इससे अगली बात कपड़े की आती है। एक अध्ययन के अनुसार सस्ते से सस्ते कपड़े से तन ढकने का सालाना खर्च 207 रुपये प्रति व्यक्ति है। लेकिन अगर एक वर्ष में सिर्फ दो जोड़ी कपड़े—एक गर्मी और एक सर्दी के लिए बनवाने हों तो इसकी सिलाई ही 250-300 रुपये बनती है। इस खर्च को भी गरीबी रेखा तय करने के पैमाने में शामिल किया जाना चाहिये। देश के करोड़ों लोग आज भी फटेहाल, नंगे शरीर गर्मी-सर्दी शरीर पर झेलने को मजबूर हैं।

इस पूरी चर्चा से यह बात सामने आती है कि भारत में गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों की गिनती 26 प्रतिशत नहीं जैसा कि पूँजीपतियों की सरकार प्रचार करती है बल्कि 70 प्रतिशत है। हालांकि इस चर्चा में की गई गिनती में कई प्रमुख खर्च शामिल ही नहीं किये गये हैं। मिसाल के तौर पर बच्चों की शिक्षा पर खर्च, स्वास्थ्य सेवाओं का खर्च, शादी-विवाहों आदि सामाजिक रस्मों का बड़ा खर्च शामिल नहीं है।

पूँजीपतियों द्वारा इस बात को लेकर जश्न मनाए जा रहे हैं कि देश तरक्की कर रहा है क्योंकि अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर काफी ऊपर है। लेकिन इसके साथ ही बेरोजगारी में वृद्धि दर 8.87 प्रतिशत थी जो 2004-05 में बढ़कर 9.11 प्रतिशत हो गई। आज हर दसवां भारतीय बेरोजगार है। 1993-94 से 2004-05 तक शहरी बेरोजगारी में 50 प्रतिशत और ग्रामीण बेरोजगारी में 60 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 1990 में नई आर्थिक नीति लागू करते समय सरकार ने दावा किया था कि जैसे ही विकास दर 7 प्रतिशत हो जायेगी तो बेरोजगारी दूर हो जायेगी। लेकिन यह क्या? 8 प्रतिशत विकास दर हासिल करने के बाद भी बेरोजगारी घटने के बजाय दुगनी हो गई है। ऐसे लोग जिनके पास कोई सुरक्षित और स्थिर रोजगार नहीं है वे भी बेरोजगारों की गिनती में आते हैं। इनकी गिनती 27-28 करोड़ है। इनमें से 4 करोड़ के नाम रोजगार दफ्तरों में दर्ज हैं, जिनमें से तीन करोड़ पढ़े-लिखे बेरोजगार हैं। 1998 से 2003 के बीच पब्लिक सेक्टर और प्राइवेट सेक्टर में 13 लाख लोगों का रोजगार खत्म हुआ है।

यह सब निशानियाँ लोकतंत्र की नहीं हो सकती। वोट देने के अधिकार से ही लोकतंत्र नहीं बन जाता। असल में भारतीय राज्य लोगों का, व्यापक मेहनतकश जनता का राज्य नहीं बल्कि मुट्ठी भर पूँजीपतियों और धन-पशुओं की तानाशाही वाला राज्य है। इसमें हुक्मरान बखूबी अपना रोल निभा रहे हैं। सामाजिक विकास का इतिहास बताता है कि कोई भी राज्य व सरकार वर्गों से ऊपर नहीं हो सकती और राज्य हमेशा हुक्मरान वर्ग की तानाशाही होता है, जिसको पूँजीपति झूठ के परदे के पीछ छुपा कर रखने की कोशिश करते हैं। लेकिन जब जनता अपने अधिकारों की माँग करती है और इन्हें हासिल करने के लिए संघर्ष करती है तब इस तथाकथित भारतीय लोकतंत्र का असली खूंखार, बेरहम चेहरा सामने आता है। पूँजीवाद का नाश और समाजवाद का आना ही व्यापक मेहनतकश जनता की मुक्ति के द्वार खोल सकता है। पैदावारी के सभी साधनों का समाज की मिल्कियत बनाया जाना ही—लोगों का, लोगों के लिए और लोगों द्वारा राज्य—एक सच्चे लोकतंत्र की स्थापना का आधार हो सकता है।

—राजविंदर

क्रान्तिकारी नवजागरण के तीन वर्ष

(23 मार्च 2005–28 सितम्बर 2008)

भगतसिंह और उनके साथियों की शहादत की 75वीं वर्षगाँठ और जन्मशताब्दी के तीन ऐतिहासिक वर्षों के दौरान नए जनमुक्ति संघर्ष की तैयारी के संकल्प और सन्देश के साथ छात्रों-युवाओं की देशव्यापी

स्मृति संकल्प यात्रा

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः डा. दूधनाथ • सम्पादकीय पताः 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ